चन्दामामा
दिसम्बर १९८४
2
RS

CHANDAMAMA

Sri. G. Rama Rao

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि संचालकः नागिरेड्डी

संसार के सभी धर्मों ने हमें सिखाया है — परस्पर प्रेम से रहना, एक दूसरे की सहायता करना और ईश्वर-प्राप्ति की साधना में अपने आपको रत करना। यदि जैन धर्म ने अहिंसा का पाठ पढ़ाया तो सिक्ख धर्म ने समन्वय की प्रेरणा दी; इस्लाम ने छोटे-बड़े का भेदभाव मिटाने को कहा तो हिन्दु धर्म ने सबको भाई के समान माना; यदि गौतम बुद्ध ने कहा, "अपने पड़ोसी से प्रेम करो," तो ईसा मसीह ने आह्वाहन किया, "अपने शत्रु से भी प्यार करो !"

क्या इन धर्मों की यह सब शिक्षाएँ, यह सब भावनाएँ एक जैसी नहीं हैं ? क्या इन सबका लक्ष्य एक ही नहीं है ? क्या कोई भी धर्म सिखाता है आपसी भेदभाव करना ?

यदि नहीं, तो क्यों मतभेद हैं ? क्यों शत्रुता का विष पनप रहा है ? इससे पहले कि हमारी भारी क्षति हो, आओ हम निर्णय करें कि अपने-अपने धर्म पर चलते हुए भी दूसरे धर्मों का सम्मान करें और मानव-जीवन में प्रेम-पुष्प खिला दें ! यही हमारा मानवता के प्रति सबसे महत्वपूर्ण योगदान होगा !

वर्षः ३७ दिसम्बर १९८४ अंकः ४

एक प्रतिः २-०० :: वार्षिक चन्दाः २४-००

चन्दामामा के संवाद

जागने में नया प्रतिमान

इंगलैण्ड के निवासी मारिस वेसन ने लगातार ४३२ घंटे १६ मिनट तक सोये बिना १९७७ में विश्व का प्रतिमान स्थापित किया था। पर हाल ही में कनाडा के निवासी विक्टर जाबो नामक विद्यार्थी ने उससे भी तीन मिनट अधिक जागकर नया प्रतिमान स्थापित किया है।

एक ही पैर पर खड़े रहने में विश्व का प्रतिमान

श्री लंका के निवासी कुमार आनन्दन ने ३३ घंटो तक एक ही पैर पर खड़े होकर इस प्रक्रिया में विश्व का प्रतिमान स्थापित किया है।

बाल मेधावी

बेलग्रेड के दस वर्ष उम्र के बालक मायिड राग मियोलर को बीस वर्ष की अवस्था के विद्यार्थियों के पढ़ने वाले विश्व विद्यालय के वर्गों में पढ़ने की अनुमति दी गई है। विज्ञान शास्त्र तथा गणित का अभ्यास करने वाले इस अद्भुत मेधावी ने पैदा होते ही सात महीनों के अन्दर बोलना शुरू किया और दो वर्ष की आयु पूरा होने के पहले ही पढ़ना सीख लिया।

क्या आप जानते हैं ?

१. क्या आप बता सकते हैं कि अन्तरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह को भेजने की कल्पना सर्वप्रथम किस वैज्ञानिक ने की ?
२. जन्म धारण के समय ही दांतों के साथ पैदा हुए प्रसिद्ध व्यक्ति कौन थे ?
३. क्या आप बता सकते हैं कि अपनी जेब में हमेशा उल्लू को रखने वाली सुप्रसिद्ध महिला कौन थी ?
४. इतिहास में सर्वप्रथम साफ़—साफ़ दाढ़ी बनाकर दिखाई देने वाला व्यक्ति कौन था ?

(उत्तर पृष्ठ ६४ में देखें)

व्यापार की दक्षता

साकेत नगर में मन्दार गुप्त नामक एक धनवान व्यापारी रहता था। उस के कोई पुत्र नहीं था, केवल एक इकलौती बेटी थी। उसका नाम वत्सला था। मन्दार गुप्त का विचार था कि योग्य युवक के साथ अपनी कन्या का विवाह करके उसके हाथ में व्यापार सौंप कर शेष जीवन विश्राम करे।

इस सम्बन्ध में उसने अपनी पत्नी से परामर्श किया। इस पर उसने अपने निकट रिश्तेदार के लड़के कुन्दन को वत्सला के योग्य वर बताया, लेकिन मन्दार गुप्त ने सुझाया कि उसके निकट रिश्तेदार का लड़का चंद्रपाल वत्सला के सर्वथा योग्य वर है।

बरसों से मन्दार गुप्त के यहाँ काम करने वाला मंजरीक भी उस समय वहीं पर था। उसने अपने मालिक से नम्र स्वर में निवेदन किया, "मालिक, मैं आपको परामर्श देने की योग्यता नहीं रखता फिर भी आप बुरा न माने तो मैं अपना विचार बता देना चाहता हूँ।"

"बताओ, क्या कहना चाहते हो?" मन्दार गुप्त ने कहा। "आप दोनों का यही विचार है कि वत्सला का होनेवाला पति व्यापार चलाने में कुशल हो। ऐसी हालत में कुन्दन और चंद्रपाल की इस सम्बन्ध में परीक्षा ली जाय तो कैसा रहेगा?" मंजरीक ने सुझाव दिया।

"वह कैसी परीक्षा है?" मन्दार गुप्त ने पूछा।

"उन दोनों को हम स्वर्ण द्वीप में भेज देंगे। वे वहाँ पर जाकर इस बात का पता लगाकर लौटेंगे कि वहाँ पर किस प्रकार के व्यापार के लिए अधिक सुविधा है। इस के आधार पर हम उनकी व्यापार दक्षता का मूल्यांकन कर सकते हैं," मंजरीक ने कहा।

"क्या? स्वर्ण द्वीप के साथ व्यापार? उस देश के नाम में स्वर्ण है पर पिछले दो वर्षों से वहाँ पर पानी नहीं बरसा, इस कारण उस देश

मन्दार गुप्त

की जनता अकाल का शिकार हो यातनाएँ झेल रही है," मन्दार गुप्त ने कहा ।

"मालिक, इसी कारण से हम इन दोनों को स्वर्ण देश में भेजना चाहते हैं । अन्य देशों के साथ व्यापार के जो अवसर हैं, उनसे प्रत्येक व्यापारी सुपरिचित है । अब इन दोनों को इस बात का पता लगाकर लौटना है कि अकाल से तड़पने वाले उस देश में किस प्रकार की वस्तुओं को लाभ के साथ बेचा जा सकता है," मंजरीक ने कहा ।

यह परीक्षा मन्दार गुप्त को भी उचित प्रतीत हुई । उनकी पत्नी ने भी इस सुझाव को उचित माना उसने कुन्दन तथा चंद्रपाल को स्वर्ण द्वीप में भेजा । थोड़े दिन बाद वे दोनों स्वर्ण द्वीप से साकेत नगर को लौट आये । मन्दार गुप्त ने मंजरीक को बुला भेजा और उसके आने पर पहले कुन्दन से पूछा, "बताओ, स्वर्ण द्वीप में किस प्रकार की वस्तुओं की मांग है ? किन वस्तुओं को वहाँ पर भेजने से हमारा विशेष लाभ हो सकता है ?"

"मेरी समझ में नहीं आता कि आप कोई नया व्यापार आरम्भ करने के लिए स्वर्ण द्वीप को क्यों चुन लेना चाहते हैं ? वहाँ की अवस्था हमारे अनुमान से कहीं अधिक भयंकर है । फिर भी यदि हम उस देश के साथ व्यापार करना चाहते हैं तो उस देश में खाद्य-पदार्थों को भेजना अधिक लाभदायक सिद्ध होगा क्योंकि वहाँ खाद्य-पदार्थों की बड़ी मांग है और इस व्यापार के द्वारा हम लाखों स्वर्ण-मुद्राएँ अर्जित कर सकते हैं," कुन्दन ने अपनी राय दी ।

इसके बाद मन्दार गुप्त ने चंद्रपाल को बुलवा भेजा और उससे भी वही सवाल किया जो कुन्दन के सामने रखा था । इस का उत्तर चंद्रपाल ने इस प्रकार दिया, "यदि आप का उद्देश्य स्वर्ण-द्वीप के साथ व्यापार करने का ही है तो हमें तुरन्त इस के लिए उचित प्रबन्ध करना होगा । वहाँ पर इस समय सब फटे-पुराने वस्त्र पहन कर घूमने वालों की संख्या अधिक है, पर साफ-सुथरे वस्त्र पहने हुए एक भी व्यक्ति नहीं दिखाई दिया । आप तो व्यापार के विषय में मुझ से कहीं अधिक अनुभव रखते हैं, इसलिए इससे कुछ अधिक विस्तारपूर्वक आपको

समझाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।"

मन्दार गुप्त ने दोनों की परीक्षा के बाद अपनी पत्नी के रिश्तेदार कुन्दन को ही जामाता बनाने के लिए योग्य समझा। इसके बाद मन्दार गुप्त ने उन दोनों युवकों को वहाँ से भेज दिया, तब मंजरीक से कहा, "मैंने अपना निकट रिश्तेदार समझकर चंद्रपाल के प्रति कुछ विशेष सहानुभूति प्रदर्शित की थी, पर मुझे यह बात थोड़ी विचित्र प्रतीत होती है कि स्वर्ण द्वीप के अकाल की अवस्था स्वयं देखने के बाद भी वह उस देश के साथ कपड़ों का व्यापार करने का सुझाव देता है। मैं ऐसी अदूरदर्शिता रखने वाले के साथ अपनी कन्या का विवाह करना नहीं चाहता। हमारी परीक्षा से कुन्दन की सामर्थ्य और व्यापार-दक्षता प्रकट हो गई है। इसलिए उसी को मैं अपना जामाता बनाना चाहता हूँ।"

इसपर आश्चर्य प्रकट करते हुए मंजरीक ने कहा, "मालिक, मुझे ऐसा मालूम होता है कि चंद्रपाल की सामर्थ्य व दक्षता का अनुमान लगाने में आज न मालूम आप क्यों गलत निर्णय ले रहे हैं। मेरा विश्वास है कि इस परीक्षा में चंद्रपाल ही सफल हुआ है ।"

"सो कैसे ? तुम विस्तार के साथ समझाओ," मन्दार गुप्त ने पूछा ।

"प्रत्यक्ष रुप से दिखाई देने वाले विषय को कोई साधारण व्यापारी भी आसानी से देख व समझ सकता है। पर भविष्य में प्राप्त होने वाले अवसरों का पहले ही अनुमान लगाने में किसी
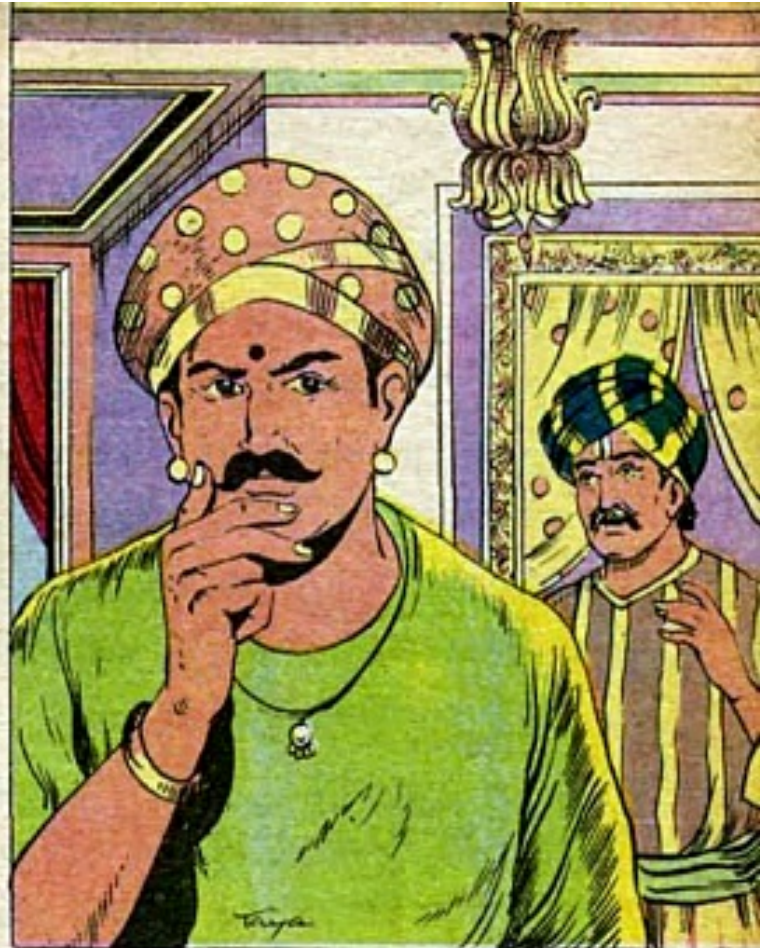
भी व्यापारी की दक्षता प्रकट होती है। उदाहरण के लिए कुन्दन की ही बात लीजिए—वह स्वर्ण-द्वीप में केवल तुरन्त ही उपलब्ध होने वाले व्यापारिक अवसरों को ही देख पाया। उसमें भी उसने बड़ी भूल की। हमें इस देश से अनाज आदि खाद्य-पदार्थों को स्वर्ण-द्वीप में भेजने के लिए राजा की अनुमति प्राप्त न होगी। यदि हम साहस करके गुप्त रुप से भेज भी दें तो इस बात का कोई भरोसा नहीं है कि भूख व गरीबी के भंवर में फंसे हुए वहाँ के लोग उचित मूल्य चुका कर उसे खरीद पायेंगे। ऐसी अवस्था में हमारा माल लुट भी सकता है और हमारे हाथ एक कौड़ी भी न लगेगी," मंजरीक ने समझाया ।

मन्दार गुप्त ने स्वीकृति सूचक सर हिलाया और पूछा, "चंद्रपाल के परामर्श के अनुसार हम लोग स्वर्ण-द्वीप में कपड़े भी भेज दें तो यही अवस्था हो सकती है न ?"

"चंद्रपाल ने स्वर्ण द्वीप के साथ तत्काल वस्त्रों का व्यापार आरम्भ करने की सलाह नहीं दी। पर इसके लिए आवश्यक प्रबन्ध तुरन्त करने का सुझाव दिया है। इस के अतिरिक्त वह आपकी व्यापारिक दक्षता से भली भांति परिचित है, इसलिए उसने बताया कि विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। इससे उसका विचार स्पष्ट विदित होता है। हमारे नगर में अनेक करघे इस समय बन्द पड़े हैं। इसलिए हमें सस्ते में उनके द्वारा वस्त्र बुनवाने का प्रयत्न करना चाहिए," मंजरीक ने कहा।

मंजरीक के समझाने के बाद मंदार गुप्त का इरादा पलट गया। चंद्रपाल ने व्यापार को नज़दीकी से समझा था। जो आँखों के सामने है वह तो कोई भी बता सकता है। इसपर मन्दार गुप्त उत्साह पूर्वक बोला, "हाँ, हाँ! तुम ठीक कहते हो। पर वह देश पहले अकाल आदि से मुक्त हो जाय, तब न ?"

"किसी भी देश में सदा के लिए बरसात बन्द नहीं हो सकती। एकाध वर्ष के बाद जब उस देश में पानी बरसेगा और वहाँ की हालत सुधर जाएगी तब वे लोग निश्चय ही अपने चीथड़ों से घृणा करने लग जायेंगे। प्रत्येक मनुष्य अन्न के बाद वस्त्र ही चाहता है। इसीलिए सूक्ष्म बुद्धि रखने वाले चंद्रपाल ने आप को ऐसा परामर्श दिया," मंजरीक ने कहा।

मन्दार गुप्त अब समझ पाया कि चंद्रपाल की बुद्धि कितनी तेज़ है। इसपर उसने अपनी पुत्री वत्सला का विवाह चंद्रपाल के साथ वैभवपूर्वक किया।

इसके बाद चंद्रपाल ने एक-दो साल के अन्दर ही अपनी व्यापारिक दक्षता का परिचय सास-ससुर को दिया। वह एक योग्य व्यापारी बन गया और मन्दार गुप्त एवं उसकी पत्नी निश्चिन्त होकर अपना जीवन बिताने लगे।

काँसे का किला

माहिष्मती नगर के राजा यशोवर्द्धन साठ वर्ष तक राज्य करके वृद्ध हो गये। बीस वर्ष की अवस्था में ही उन का राज्याभिषेक हुआ था और उन्होंने अनेक युद्ध करके अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया। ऐसे विशाल राज्य के अधिपति होते हुए भी वृद्धावस्था में वे मानसिक शांति से वंचित रहे। इस का प्रमुख कारण स्वयं उनके पुत्र ही थे।

यशोवर्द्धन के तपोवर्द्धन तथा गुणवर्द्धन नामक दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र तपोवर्द्धन पच्चीस वर्ष का था। लौकिक व्यवहारों के प्रति उस के मन में बिल्कुल अभिरुचि न थी। वह सदैव अपना समय धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन में तथा दार्शनिकों और पंडितों के साथ दर्शन व वेदान्त सम्बन्धी सूक्ष्म विषयों की चर्चा में बिताता था।

छोटा पुत्र गुणवर्द्धन बीस वर्ष का था। उसकी मानसिक अवस्था तपोवर्द्धन से सर्वदा भिन्न थी। वह केवल भोग-विलासों में अपना समय व्यतीत किया करता था। उसके मन में धर्म के प्रति थोड़ी सी भी निष्ठा न थी। मिथ्यावादी, दुष्ट व कपट स्वभाव वाले युवक उसके घनिष्ठ मित्र थे।

यशोवर्द्धन ने अपना शेष जीवन किसी आश्रम में ईश्वर के ध्यान में बिताना चाहा। पर उन्होंने सोचा कि उनके द्वारा राज्य का परित्याग करने के पूर्व एक समर्थ व्यक्ति को राज्य शासन का दायित्व अपने ऊपर लेना आवश्यक है, वरना देश में अराजकता फैल जाएगी। एहिक मामलों में किसी प्रकार की अभिरुचि न रखने वाला उनका ज्येष्ठ पुत्र तपोवर्द्धन उनके अनन्तर

देश का राजा बने तो किसी भी दृष्टि से राज्य के लिए हितकारक नहीं। अब रही छोटे राजकुमार गुणवर्द्धन की बात, तो उसके तो ढंग ही निराले थे।

गुणवर्द्धन के गुण विशेषों का समाचार यशोवर्द्धन ने सुन रखा था। उन्होंने कई संदर्भों में उसे डांटा भी था। यशोवर्द्धन के लिए यह विस्मय की बात बनी रही कि कोई बीस वर्ष की छोटी आयु में ही ऐसा व्यवहार कर सकता है। पर उन के मन में यह विश्वास बंध गया कि राज्य का दायित्व उसके सर पर डालने पर वह सुधर सकता है।

उनका मन बहुत परेशान हो गया। उनके सामने ऐसी परिस्थिति आ गई थी जिसका सामना करने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि दूसरों से भी इस विषय में बातचीत करना ठीक होगा। पर उन्होने जब अपने मंत्री व सामन्तों के साथ इस सम्बन्ध में परामर्श किया, तब उनमें से कुछ लोगों ने गुणवर्द्धन को राज्य-भार सौंपने का विरोध किया। साथ ही उन लोगों ने इस बात का संशय प्रकट किया कि ज्येष्ठ पुत्र के रहते छोटे राजकुमार को राज्य-भार सौंपने पर जनता के अन्दर अशांति फैल सकती है। उन्होंने कहा कि धार्मिक प्रवृति तथा सदाचार संपन्न तपोवर्द्धन का माहिष्मती नगर का राजा बन जाना सब प्रकार से हितकारक होगा।

पर यह परामर्श यशोवर्द्धन को पसन्द न आया। उनका विचार था कि क्षत्रिय धर्म के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति न रखने वाले ज्येष्ठ पुत्र को राजा बनाने पर उसको किसी मंत्री के हाथ का खिलौना बने रहना होगा। हमेशा धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन में लगे रहने से राज्य के प्रति अनेक कार्यों का निश्चय मंत्री ही किया करेंगे। साथ ही उन्हें इस बात का भी डर लगा कि उन्होंने अनेक युद्धों में खून बहाकर जिस राज्य का विस्तार किया, वह अपने वंशधरों के हाथों से निकलकर पराये लोगों के पास चला जायेगा। नहीं, कदापि नहीं। वे ऐसा नहीं होने देंगे। जल्दी ही इस समस्या का हल ढूंढ निकालना होगा!

इस प्रकार असंख्य भय व सन्देहों के कारण

अनेक दिन मानसिक चिन्ता के शिकार हो, वे आखिर एक निर्णय पर पहुँचे । वह निर्णय था-अपने राज्य के सामन्तों, बुजुर्गों तथा प्रमुख नागरिकों का समावेश करके उनको अपने विचार सुनाकर छोटे राजकुमार गुणवर्द्धन को अपने उत्तराधिकारी के रुप में उनका अनुमोदन लेना । गुणवर्द्धन चाहे श्रत्रिय धर्म में रुचि न लेता हो मगर अपने बड़े भाई के मकाबले जाग्रत और तेज तो है । यदि वह राज-काज ठीक से न संभाल पाये, फिर भी राज्य को हाथ से तो न निकलने देगा । मुकाबला करने की शक्ति तो है उसमें !

कुछ दिन बाद राज्य के प्रमुख व्यक्ति, बुजुर्ग व सामन्त इस कार्य के लिए निमंत्रित किये गये । उस समारोह में यशोवर्द्धन ने अपना विचार उन के सामने रखा । साथ ही उन्होंने उन लोगों को यह आश्वासन भी दिया कि अपने राज्य त्याग के बाद गुणवर्द्धन का राज्यभिषेक करने के लिए उनका ज्येष्ठ पुत्र तपोवर्द्धन किसी प्रकार की आपत्ति न उठायेगा ।

दुष्कृत्यों के लिए विख्यात गुणवर्द्धन को राजगद्धी पर बैठाना किसी को भी मान्य न था, फिर भी यह बात राजा के सामने प्रकट करने में सबने संकोच किया । ऐसी अवस्था में वीरपुर के सामन्त सूर्यवर्मा ने साहस करके खड़े होकर गुणवर्द्धन के अत्याचारों का भाण्डा फोड़ किया और अपना विचार व्यक्त किया कि गुणवर्द्धन किसी भी दृष्टि से राजा बनने योग्य नहीं है ।

सभा हर्ष-ध्वनि से गूँज उठी । सूर्यवर्मा के

विचारों का समर्थन करते हुए कई सामन्तों ने व्याख्यान दिये । कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि चन्द वर्षों तक यशोवर्द्धन राज्य का भार वहन करें । साथ ही यह निवेदन किया कि इस अवधि के भीतर ज्येष्ठ पुत्र तपोवर्द्धन के मन में राज-काजों के प्रति अभिरुचि पैदा करने का प्रयत्न किया जाये ।

यशोवर्द्धन यह सब देख-सुन कर व्यग्र हो उठे । जो वह चाहते थे वह लोगों का पसन्द न था और जो बात लोग चाहते थे वह उनको पसन्द न थी । उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि पसन्द न थी । उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें । इसी परेशानी में वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाये । असंख्य

सामन्तों और प्रमुख व्यक्तियों के विचारों के विरुद्ध छोटे राजकुमार का राज्यभिषेक किया तो निश्चय ही देश के भीतर आन्तरिक विचारों के विरुद्ध छोटे राजकुमार का राज्यभि-षेक किया तो निश्चय ही देश के भीतर आन्तरिक युद्ध होगा। अपने सामन्तों में सबसे अधिक प्रभावशाली व पराक्रमी सूर्यवर्मा अवंश्य उस विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण करेगा! फिलहाल यदि देश के भीतर शांति रखनी है तो उनके सामने एक मात्र उपाय यही प्रतीत हुआ कि वे राज्य-त्याग करने के अपने विचार को बदल लें। जब तक वे फिर राज्य-त्याग करने का विचार करेंगे, उस बीच वे गुणवर्द्धन को राज-काज में निपुण बनवा देंगे। शायद अभी छोटा होने के कारण उसमें चंचलता है। मगर अभी तो वे खुद ही राज्य को संभालें। अन्त में उन्होंने यही किया। उनके निर्णय को सुनकर सबने अपना हर्ष प्रकट किया।

सभा की समाप्ति पर राजा यशोवर्द्धन अपने मंत्री को साथ लेकर सीधे अपने उद्यान की ओर चल पड़े। वहाँ पर राजा ने मंत्री का परामर्श मांगा। मंत्री ने सुझाया कि इस सम्बन्ध में सूर्यवर्मा के साथ एकान्त में चर्चा करना उचित होगा।

अन्त में मंत्री ने राजा को सुझाव दिया कि सूर्यवर्मा सामन्तों में अधिक शक्तिशाली है। यही नहीं बल्कि सभी सामन्तों की तुलना में अधिक बुद्धिमान एवम् चतुर है। इसलिए उसको अपने पक्ष में कर लेने पर यह जटिल समस्या हल हो जाएगी।
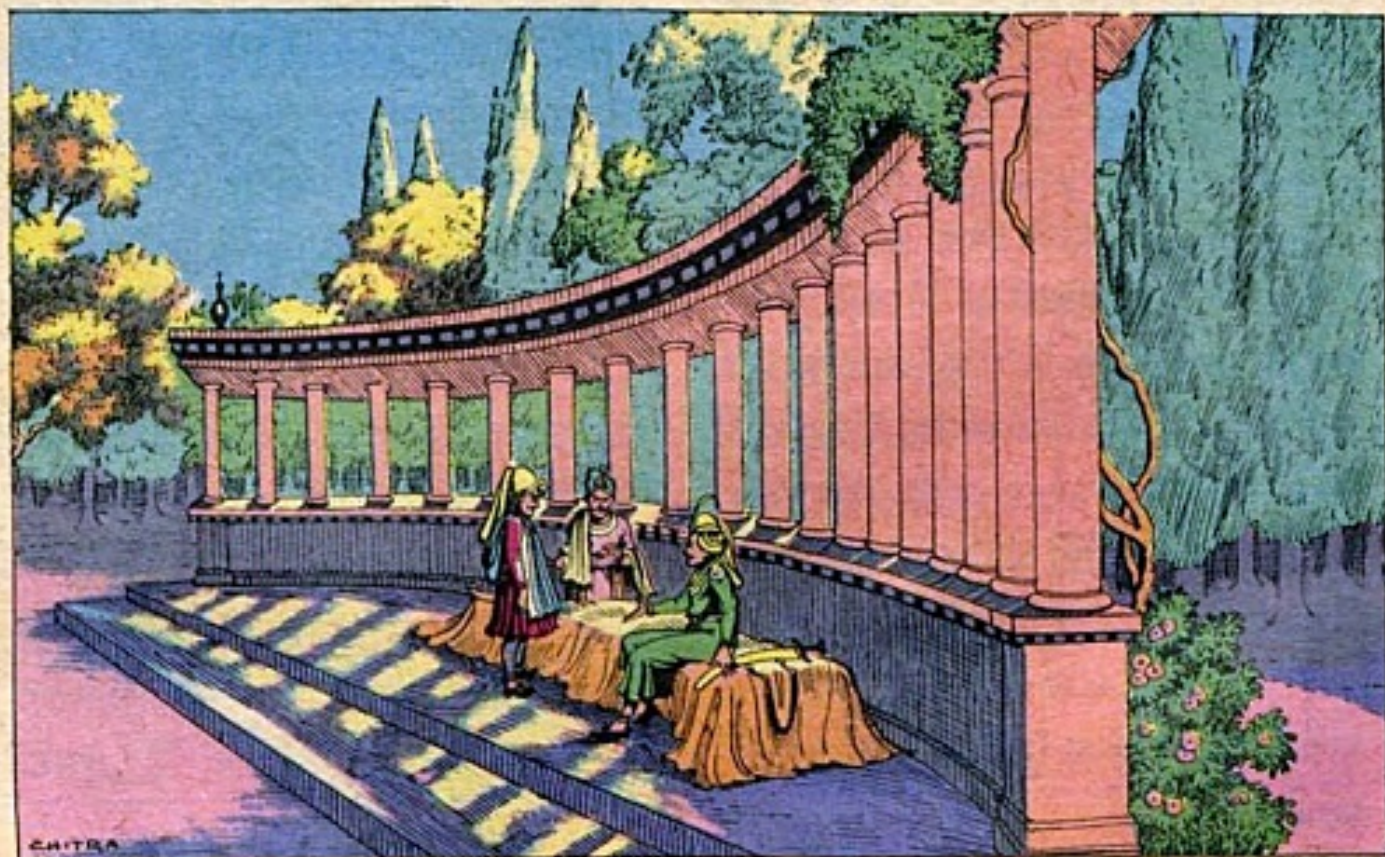
सूर्यवर्मा उद्यान-वन में बुलाये गये । यशोवर्द्धन ने आदर पूर्वक उसको अपने पार्श्व में बैठने का आसन दिखाकर कहा, "वर्माजी, आज के समारोह में तुमने जो विचार व्यक्त किये, उनसे मैं सहमत नहीं हूँ । फिर भी मैं तुम्हारे साहस की प्रशंसा करता हूँ । मैं जानता हूँ कि वीरपुर के सामन्त सदा राजभक्त रहे हैं । गुणवर्द्धन अवस्था में छोटा अवश्य है मगर तुम्हारे जैसे व्यक्ति का मार्ग-दर्शन, सहयोग व समर्थन उसको प्राप्त हो जाये तो वह एक योग्य शासक बन सकता है—यही मेरा विचार है ।"

"महाराज, धर्म व अधर्म के ज्ञाता युवराज साधुशील तपोवर्द्धन के रहते हुए आप छोटे राजकुमार को राज्यभार सौंपने का विचार रखते हैं । यह जनता की दृष्टि में न्याय संगत प्रतीत न होगा । इसके अलावा अगर आप यही मार्ग-दर्शन और सहयोग बड़े राजकुमार को दें, तो ही अच्छा होगा । यदि आप न्याय संगत निर्णय लेंगे तो यह न केवल राज्य के लिए अच्छा होगा वरन सम्पूर्ण जनता भी उसका सहर्ष स्वागत करेगी ।" सूर्यवर्मा ने कहा ।

इस पर राजा यशोवर्द्धन ने अपने मंत्री की ओर सार्थक दृष्टि दौड़ाई । मंत्री ने स्वीकृति सूचक सर हिलाया ।

"तब तो मैं तपोवर्द्धन को एक वर्ष तक तुम्हारे पर्यवेक्षण में छोड़ दूँगा । इस अवधि के अन्दर तुम उसके मन में लौकिक व्यवहारों के प्रति अभिरुचि जाग्रत करने का प्रयत्न करो । साथ ही क्या तुम उसको राजोचित शिक्षा-दीक्षा से संपन्न कर सकोगे ?" राजा ने पूछा ।

सूर्यवर्मा ने कुछ दिर विचार किया। उसने राजा के प्रस्ताव को अपनी समझ में उचित ही समझा। उसे यह यक्ति ठीक प्रतीत हुई। इसलिए उसने अपनी स्वीकृति दी।

इस के बाद उसने बताया कि वह वीरपुर जाकर वहाँ के कार्यों को अपने पुत्र चंद्रवर्मा को सौंप कर चन्द दिनों में राजधानी को लौट आएगा। राजा यशोवर्द्धन ने मान लिया।

सूर्यवर्मा राजा यशोवर्द्धन से विदा लेकर अपने निवास को लौट आया। उसी दिन शाम को राजधानी से निकलकर वीरपुर जाने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।

इधर सूर्यवर्मा अपनी वापसी यात्रा की तैयारी में निमग्न था, उधर रास्ते में ताक में रह कर उसकी हत्या का प्रबन्ध किया जा रहा था। इस षडयंत्र का नेता सर्पकेतु नामक एक सामन्त था। उस का राज्य वीरपुर की सीमा पर अवस्थित था। वह कई वर्षों से वीरपुर पर किसी प्रकार आधिपत्य जमाने का षडयंत्र रच रहा था। पर अभी तक यह सम्भव न हो पाया था। पर अब उसने यह कल्पना की कि राजा यशोवर्द्धन के छोटे पुत्र गुणवर्द्धन को अपने पक्ष में करके अपने इस उद्धेश्य को सफल बना सकता है।

गुणवर्द्धन को जब पता चला कि उसके पिता के अनन्तर राजा बनने से विरोध करने वाला व्यक्ति सामन्त सूर्यवर्मा है, तब वह क्रोधावेश में आ गया। उसने सोचा कि सूर्यवर्मा का आश्रय पाकर ही अन्य सामन्त उसका विरोध कर रहे हैं। ऐसी अवस्था नें उसे लगा कि सूर्यवर्मा को समाप्त कि ये बिना उसके मार्ग का कांटा साफ़ नहीं हो सकता। इसे रास्ते से हटाना ही होगा पर वह अकेले सूर्यवर्मा का सामना करने की स्थिति में नहीं है, उसका साथ देनेवाले मित्रों में से कोई भी सूर्यवर्मा से लोहा लेने की शक्ति एवं सामर्थ्य नहीं रखता।

इस प्रकार गुणवर्द्धन सूर्यवर्मा के साथ प्रतीकार लेने का उपाय सोच ही रहा था कि सर्पकेतु उससे मिलने आया। दोनों ने एक दूसरे के विचारों को समझ लिया। अब क्या था। पत्थर से पत्थर टकराया तो दोनों के भीतर चिंगारी भड़की। चिंगारी को हवा लगने की देर थी, बस आग लग चुकी थी। सर्पकेतु ने

युवराज गुणवर्द्धन को बताया कि चन्द अंगरक्षकों के साथ वीरपुर जाने वाले सूर्यवर्मा पर पहाड़ी मार्ग में अचानक हमला करके उस का वध करना आसान है। उसने यह भी आश्वासन दिया कि सूर्यवर्मा का अन्त करने के लिए आवश्यक सैनिक दल उसके साथ तैयार है।

"यदि आप यह कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सके तो मैं किसी न किसी दिन अवश्य आपकी सहायता करूँगा। शक्तिशाली सूर्यवर्मा के अभाव में मैं निश्चित रुप से इस देश का राजा बन जाऊँगा," गुणवर्द्धन ने कहा।

"इस में कोई सन्देह नहीं है। पहले ही इस बात का अन्दाज़ लगा कर मैंने सूर्यवर्मा के राज्य को हस्तगत करने के लिए आवश्यक व्यूह की रचना कर रखी है। उस की मृत्यु का समाचार मिलते ही मेरी सेना उस के राज्य पर हमला करके उस पर क़ब्ज़ा कर लेगी। इस प्रयत्न में सूर्यवर्मा का पुत्र चंद्रवर्मा कोई बड़ा रोड़ा नहीं बन सकता। मेरी सारी सेना साधारण नागरिकों के वस्त्र धारण कर वीरपुर के दुर्ग पर अधिकार कर लेगी। पर प्रकट रुप में महाराजा यशोवर्द्धन को ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि यह सब एक दुष्ट व क्रूर सामन्त के प्रति जनता के द्वारा किया गया विद्रोह है ऐसी कार्यवाही यदि हम सावधानीपूर्वक और चतुराई से करें तो हमें सफलता अवश्य मिलेगी," सामन्त सर्पकेतु ने कहा।

"इस के लिए आवश्यक सारी सहायता मैं
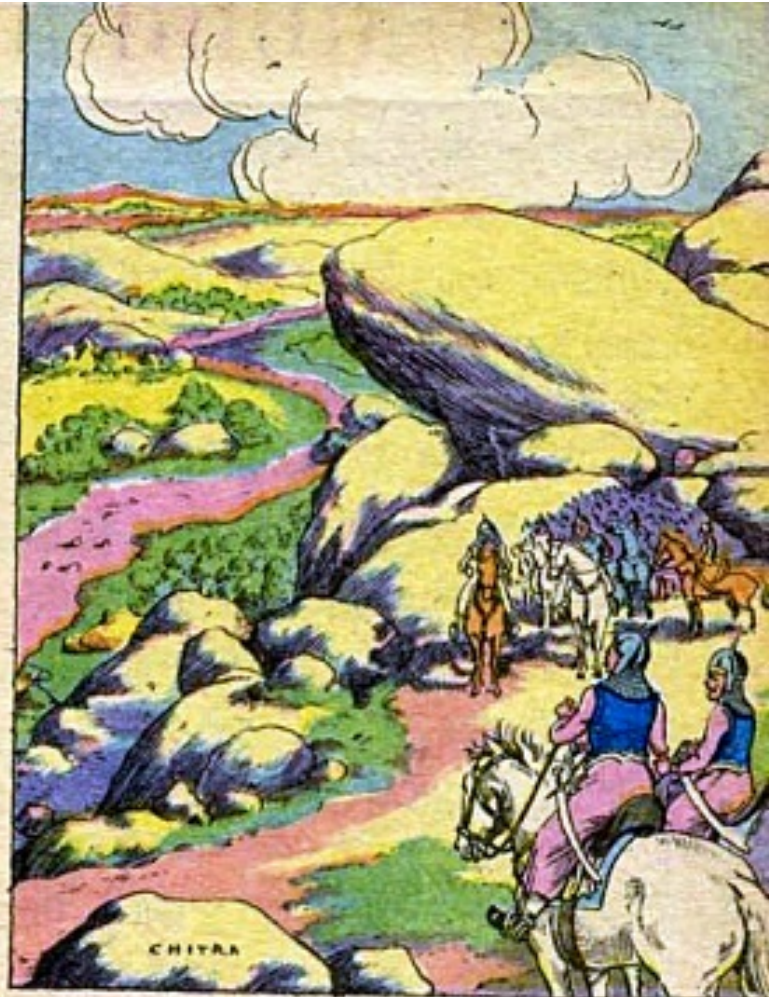
करूँगा। अवसर पाकर मैं अपने पिताजी को समझा दूँगा कि सामन्त सूर्यवर्मा प्रजा कंटक है। यदि उसकी हत्या वीरपुर राज्य की सीमा पर हो जाये, तो जनता इस बात का समर्थन करेगी। बाक़ी इन्तजाम आप कर लीजिए," गुणवर्द्धन ने कहा। गुणवर्द्धन नामक अनगिनत अवगणों वाला यह राजकुमार तो बस निराला ही था। यह अवगुण उसके नाम को डुबो देने वाले कर्मों को वह अपनी जीत समझ रहा था!

गुणवर्द्धन की बातों ने सर्पकेतु के अन्दर अत्यन्त उत्साह भर दिया। उसे लगा कि शक्ति शाली सूर्यवर्मा के रोड़े को हटाने के बाद गुणवर्द्धन को माहिष्मती नगर का राजा बनाना कोई कठिन कार्य नहीं है। साथ ही सूर्यवर्मा की

हत्या के बाद वीरपुर के राज्य को अपने राज्य में मिलाने के साथ साथ माहिष्मती राज्य के दरबार में अपना प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। गुणवर्द्धन इस बात से अज्ञात था कि ऐसा करने से सर्पकेतु उसे भी दगा दे रहा है और अपने ही राज्य की तबाही में साथ दे रहा है।

इस प्रकार सूर्यवर्मा की हत्या का षडयंत्र रच कर सर्पकेतु यथा शीघ्र राजधानी नगर को छोड़ अपने अनुचरों के साथ चला गया और वीरपुर राज्य की सीमा पर टोह लगाये सूर्यवर्मा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

सूर्यवर्मा इस बात से सर्वदा अनभिज्ञ था कि उस की हत्या के लिए षडयंत्र रचा गया है। वह अपने मुट्ठीभर अनुचरों तथा सेवकों के साथ उसी दिन शाम को अपने राज्य के लिए रवाना हुआ। मध्य मार्ग में एक स्थान पर रात को अपना डेरा डाला और सूर्योदय के होते ही पुनः अपनी यात्रा चालू कर दी।

उस दिन शाम तक सूर्यवर्मा अपने राज्य की सीमा पर पहुँचा। वह सारा प्रदेश पहाड़ों तथा छोटे-मोटे जंगलों से भरा हुआ था। सूर्यवर्मा किसी प्रकार के खतरे की आशंका किये बिना अपने घोड़े को हांकते तेज़ी के साथ चला जा रहा था। उसके दिमाग में बराबर यही विचार चक्कर काट रहा था कि युवराज के मामलों में वह जो नई जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रहा है, उसे कैसे सम्पन्न किया जाये।

अचानक पहाड़ी टीलों में कोलाहल हुआ। उस ध्वनि को सुनते ही सूर्यवर्मा ने अपने घोड़े को रोक दिया और पीछे मुड़कर अपने अनुचरों की ओर देखा। इतने में शिलाओं तथा वृक्षों के पीछे से साधारण नागरिकों के वेष में रहनेवाले अनेक सशस्त्र घुड़सवार भयंकर गर्जन करते हुए उन पर टूट पड़े। सूर्यवर्मा ने पलक मारने की देरी के अन्दर अपने म्यान के भीतर से तलवार खींच ली और दुश्मन का सामना किया। पर तब तक उस को उसके अनुचरों से अलग कर दिया गया था। दस बारह आयुधधारी व्यक्ति भीषण गर्जन करते हुए एक साथ उस पर आक्रमण कर बैठे।

(क्रमशः)
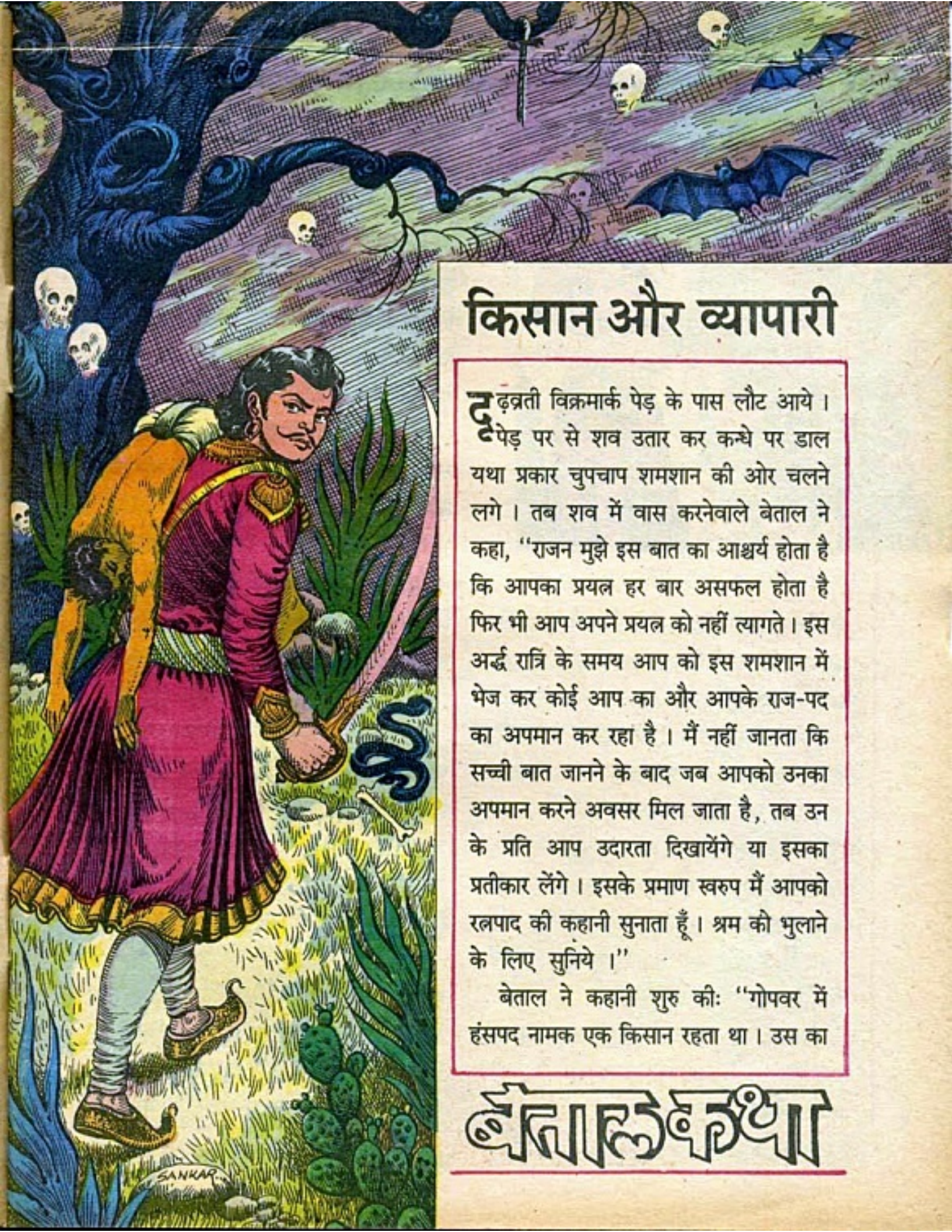
किसान और व्यापारी

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये । पेड़ पर से शव उतार कर कन्धे पर डाल यथा प्रकार चुपचाप शमशान की ओर चलने लगे । तब शव में वास करनेवाले बेताल ने कहा, "राजन मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि आपका प्रयत्न हर बार असफल होता है फिर भी आप अपने प्रयत्न को नहीं त्यागते । इस अर्द्ध रात्रि के समय आप को इस शमशान में भेज कर कोई आप का और आपके राज-पद का अपमान कर रहा है । मैं नहीं जानता कि सच्ची बात जानने के बाद जब आपको उनका अपमान करने अवसर मिल जाता है, तब उन के प्रति आप उदारता दिखायेंगे या इसका प्रतीकार लेंगे । इसके प्रमाण स्वरुप मैं आपको रत्नपाद की कहानी सुनाता हूँ । श्रम को भुलाने के लिए सुनिये ।"

बेताल ने कहानी शुरु कीः "गोपवर में हंसपद नामक एक किसान रहता था । उस का

बेतालकथा

पुत्र रत्नपाद बड़ा बुद्धिमान था । उसने गाँव की पाठशाला में अपनी शिक्षा समाप्त की । पर इस से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ । उसने दूर के गुरुकुलों में जाकर अनेक आचार्यों के आश्रय में रहकर ऊँची शिक्षा प्राप्त की और बड़ा विद्वान बनकर अपने गाँव को लौट आया । कुछ दिनों में ही राजा को उसके पांडित्य का समाचार मिला । राजा ने उसको एक हज़ार रजत मुद्राएँ मासिक वेतन देकर अपने दरबार में नौकरी देने का निश्चय किया और यह समाचार उसके घर भेज दिया ।

हंसपाद यह समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुआ कि उसके पुत्र को राजदरबार में बड़ी अच्छी नौकरी मिल गई है ।

उसने अपने पुत्र रत्नपाद से कहा, "बेटा तुम परिश्रम करके पढ़-लिख कर बड़े विद्वान बन गये हो । राजा ने तुम्हें नौकरी देने का निश्चय कर लिया है । अब तुम विवाह करके गृहस्थी की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले लो तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ । तुम अपनी स्वीकृति दो तो मैं तुम्हारे लिए एक योग्य कन्या का चुनाव करूँ । तुम विवाह करके राजधानी में जाओ और अपनी गृहस्थी बसा लो ।"

रत्नपाद इतनी जल्दी विवाह करना नहीं चाहता था, फिर भी वह अपने पिता की इच्छा का विरोध नहीं कर पाया ।

हंसपाद के मकान से सटकर गोपीनाथ नामक एक धनवान का महल था । उसने व्यापार करके लाखों की संपत्ति कमाई थी । वह हंसपाद का दूर का रिश्तेदार था और बचपन से उन दोनों के बीच अच्छी मैत्री भी थी ।

गोपीनाथ की पुत्री विवाह योग्य हो गई थी । वह न केवल सुन्दर थी, बल्कि चुस्त और विनयशील भी थी । बहुत दिनों से वह उस कन्या को अपनी बहु बनाने की इच्छा रखता था । अब उसने सोचा कि गोपीनाथ से इस विषय में बातचीत करनी चाहिए ।

पहले उसने रत्नपाद को विवाह के लिए मनाया । अपने पुत्र की स्वीकृति पाकर हंसपाद गोपीनाथ के घर पहुँचा और बातचीत करते हुए विवाह का प्रस्ताव रखा । यह प्रस्ताव सुनते ही गोपीनाथ विस्मय में आकर बोला, "मित्र, हमारे

बीच दूर की रिश्तेदारी के साथ मित्रता भी है, पर हम लोगों के सम्बन्धी बनने में ये दोनों गुण पर्याप्त नहीं हैं। मैं एक सुसम्पन्न परिवार के युवक के साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहता हूँ। ऐसा न करने पर सब लोग मुझे मूर्ख समझेंगे और मेरी निन्दा करेंगे इस कारण से यह सम्भव न होगा कि अपनी कन्या का विवाह मैं तुम्हारे पुत्र के साथ करूँ। मित्र, अच्छा यही होगा कि तुम अपनी मर्यादा में ही रहो और मेरी कन्या का विचार अपने मन से निकाल दो।"

यह उत्तर सुनकर हंसपाद लज्जित होकर बोला, "मित्र, यह बताओ कि मेरे पुत्र के अन्दर किस बात की कमी है। उसको राजाश्रय भी प्राप्त है। एक हज़ार रजत मुद्राएँ मासिक वेतन पाता है। तिस पर वह अपने पांडित्य के बल पर कभी भी उच्च स्थिति पर पहुँच सकता है। क्या यह आवश्यक है कि लड़के के पिता के पास अपार धन हो ? लड़की का विवाह लड़के के साथ करना है या उसके पैसे के साथ ? मित्र, मुझे समझ नहीं आता कि तुम्हारे विचार इतने स्वार्थी किस प्रकार हो गये हैं। मेरा परामर्श तो यह है कि अपनी कन्या के लिए तुम उचित वर का चुनाव करो और अन्य किसी बात का ध्यान मत करो।"

"तुम बुरा मत मानो। राजधानी में एक हज़ार रजत मुद्राएँ जिन्दगी बसर करने के लिए पर्याप्त हो सकती हैं, पर सुखपूर्वक जीने के लिए नहीं," गोपीनाथ ने कहा।

हंसपाद घर लौट आया। अपने पिताको चिन्तित देख रत्नपाद ने इस का कारण पूछा।

उसने सारी बात बताई। पिता की चिन्ता का कारण जानकर उसे बहुत बुरा लगा, परन्तु उसने स्वयं पर नियंत्रण रखा। रत्नपाद तब तक नहीं जानता था कि उस का पिता गोपीनाथ की पुत्री को अपनी बहु बनाना चाहता है।

इसके थोड़े दिन बाद पड़ोसी गाँव के किसान की पुत्री के साथ रत्नपाद का विवाह सम्पन्न हुआ।

एक महीने बाद रत्नपाद ने राजधानी में अपनी गृहस्थी बसाई।

शनैः शनैः रत्नपाद को राजदरबार में पर्याप्त यश प्राप्त हुआ, परन्तु आर्थिक दृष्टि से उसकी अवस्था विशेष नहीं सुधरी। क्रमशः उसका परिवार बढ़ता गया और खर्चा भी। इससे रत्नपाद का मन भी व्याकुल रहने लगा।

रत्नपाद इस अवस्था पर सोच विचार करके आखिर अपने गाँव को लौट आया। इस बीच रत्नपाद का पिता हँसपाद बूढ़ा हो चला था और वह खेतीबाड़ी करने की स्थिति में न था। रत्नपाद ने अपने खेत के साथ थोड़ा खेत और मालगुजारी पर ले लिया और स्वयं खेतीबाड़ी करना आरम्भ किया।

राजदरबार में रेशमी गद्दों पर बैठ साहित्य चर्चाएँ करने वाले रत्नपाद को धूप-बरसात आदि में कड़ी मेहनत करना कष्ट दायक प्रतीत हुआ, फिर भी वह लगन के साथ परिश्रम करते हुए इस नये जीवन से अपने आपको अभ्यस्त करने लगा।

गाँव में रत्नपाद का खर्चा भी कम था, इस कारण से वह अपनी आय में से थोड़ा-बहुत बचा पाता था। इस प्रकार चार साल गुज़र गये। इस बीच उसके पास थोड़ी पूँजी जमा हो गई। उस पूँजी को लगाकर रत्नपाद ने खेती-बाड़ी के साथ व्यापार आरम्भ किया। वह अपने गाँव के किसानों से अनाज खरीद लेता और शहर के व्यापारियों के हाथ लाभ के साथ बेच देता था।

इस प्रकार दस वर्ष व्यतीत हो गए। रत्नपाद ने कुछ और नये व्यापार आरम्भ किए और लाखों की संपत्ति कमाई। उसने एक बहुत बड़ा महल भी बनवाया। इस समय वह दूसरों की दृष्टि में समर्थ और बहुत बड़ा व्यापारी था। उसका ज्येष्ठ पुत्र जवान हो चुका था। उसने -

व्यापार की जिम्मेदारी अपने हाथ में ली और व्यापार की खूबियों से परिचित होकर एक कुशल व्यापारी कहलाया ।

एक जमाने में जिस गोपीनाथ ने रत्नपाद के साथ अपनी कन्या का विवाह करने से मना किया था, उसने अपनी पुत्री का विवाह पड़ोसी गाँव के एक संपन्न परिवार के युवक के साथ कर दिया था । उस की कन्या अब विवाह के योग्य हो चली थी । गोपीनाथ अब अपनी नातिन का विवाह रत्नपाद के पुत्र के साथ करने का इच्छुक था क्योंकि रत्नपाद इस समय लखपति था और उसका पुत्र व्यापार में कुशल था । इन्हीं गुणों ने गोपीनाथ को आकृष्ट किया और उसने सोचा कि यह सम्बन्ध उचित एवम लाभदायक रहेगा ।

एक दिन गोपीनाथ ने हँसपाद से मिल कर कहा, "मित्र, इस के पूर्व जो कुछ हुआ है, उसको याद करके दुःखी होना उचित नहीं है । दुर्भाग्यवश उस समय हम सम्बन्धी नहीं बन सके, पर अब मैं अपनी नातिन का विवाह तुम्हारे पोते के साथ करना चाहता हूँ ।"

हँसपाद यह सुनकर सोच में पड़ गया । उसे उस दिन की याद आ गई जब इसी गोपीनाथ ने अपनी पुत्री का विवाह रत्नपाद के साथ करने से इसलिए मना कर दिया था क्योंकि रत्नपाद का पिता धनवान न था । आज जब रत्नपाद के पास अपार सम्पदा है तो यही गोपीनाथ अब सम्बन्ध जोड़ना चाहता है । उसे यह प्रतीकार लेने का

अवसर जान पड़ा । वह पल भर चुप रहा, फिर नाराज़ होकर बोला, "यह कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि बड़े-बड़े करोड़पति मेरे पोते के साथ अपनी कन्याओं को ब्याहने के लिए तैयार हैं ।"

इस प्रकार हँसपाद को अपने अपमान का प्रतीकार लेने का अच्छा अवसर मिला । वह बहुत दिनों से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था । पर रत्नपाद ने बीच में हस्तक्षेप करके कहा, "पिताजी, हमें पिछली बातों को भूल जाना चाहिए । हमें धन की कोई कमी नहीं है ।" यह कहकर रत्नपाद ने अपने पिता को समझाया और गोपीनाथ के साथ रिश्ता जोड़ने के लिए सहमत किया ।

इसके बाद गोपीनाथ की नातिन और

हंसपाद के पोते का विवाह वैभवपूर्ण संपन्न हुआ ।

बेताल ने यह कहानी सुना कर कहा, "राजन, एक समय गोपीनाथ ने रत्नपाद और उसके पिता का अपमान किया था, ऐसी अवस्था में रत्नपाद ने गोपीनाथ की नातिन का विवाह अपने पुत्र के साथ क्यों संपन्न किया ? साथ ही अपने अपमान के प्रतीकार लेने का अवसर पाकर भी उसने उसे अपने हाथ से क्यों जाने दिया ? क्या इसके पीछे उसका उद्देश्य एक बहुत बड़ा उदारशील कहलाने का था या यह विचार था कि गोपीनाथ जैसा धनकुबेर स्वयं उसके साथ रिश्ता जोड़ने के लिए उस के द्वार पर आया है ? इस संदेह का समाधान जान-बूझ कर भी न देंगे तो आपका सर फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा ।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया, "गोपीनाथ ने ऐसा कोई बड़ा अपराध नहीं किया था जिस का कोई प्रतीकार ले ! वह एक अच्छा दुनियादारी का अनुभव रखने वाला कुशल व्यापारी था। जैसे शत्रुता के लिए समान स्तर के लोगों की आवश्यकता होती है, वैसे ही रिश्ते के लिए समान स्तर की आवश्यकता होती है । इसी विचार से प्रेरित होकर उसने अपनी पुत्री का विवाह एक संपन्न परिवार में करना चाहा ।

रत्नपाद एक किसान के स्तर से महान व्यापारी के स्तर तक ऊपर उठा था, इसलिए उसे गोपीनाथ की मानसिकता को समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई । अब रही हंसपाद की बात—वह एक छोटा सा किसान था। उसे यह नहीं मालूम था कि धन लोगों के बीच अन्तर उत्पन्न करता है। इसीलिए उसने गोपीनाथ की अस्वीकृति को अपना अपमान माना और किसी प्रकार अवसर पाकर उस का अपमान करना चाहा। दूसरी ओर रत्नपाद बहुत बड़ा व्यापारी था, इसलिए उसके मन में प्रतीकार लेने की भावना न थी ।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग करते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा । (कल्पित)

शासक के गुण

चंद्रपुर के जमीन्दार के यहाँ एक दीवान कई वर्षों से काम करता था। उसका नाम केशव स्वामी था। जब जमीन्दार बूढ़े हुए, तब उन्होंने अनुभव किया कि दीवान का काम काफ़ी अधिक है। उनकी आयु भी तो अब अधिक हो चली थी। इसलिए उन की सहायता करने के लिए एक अनुभवी सहायक की नियुक्ति करना बहुत ही आवश्यक है जिससे एक ओर तो दीवान के काम का बोझ कुछ हलका हो जाये और दूसरी ओर दीवान का काम सीखने वाला एक व्यक्ति मिल जायेगा।

यह समाचार जानकर रामभद्र और शिवचंद्र नामक दो व्यक्ति जमीन्दार से मिलने आये। इस पर जमीन्दार ने दीवान को सुझाया कि उन दोनों में से किसी एक युवक को अपने सहायक के पद के लिए चुन लें।

दीवान ने पहले रामभद्र को बुलवा भेजा और कहा, "जमीन्दारी चलाने में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उनमें एक समस्या दूसरी समस्या से मेल नहीं खाती। इसके अतिरिक्त एक समय में किसी समस्या का हल जिस ढंग से किया जाता है, वही ढंग दूसरे संदर्भ में उसी प्रकार की समस्या को हल करने में उपयोगी सिद्ध नहीं होता।"

रामभद्र ने इसके उत्तर में बताया, "महानुभव, इस के पूर्व मैंने कई जमीन्दारों के यहाँ काम किया है और पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया है। इस आधार पर मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मैं आपके सहायक का काम पूरी ज़िम्मेदारी के साथ निभाऊँगा।"

इस पर दीवान केशव स्वामी ने कहा, "एक कचहरी का अनुभव दूसरी कचहरी के लिए कितना लाभ-दायक हो सकता है यह मैं नहीं जानता। पर मैं यहाँ के बारे में बताता हूँ। यहाँ पर कई काम बिना हल के पड़े हुए हैं, साथ ही अनेक जटिल समस्याओं से भरे हुए हैं। क्या

इन सब को एक क्रम पद्धति में रखने के लिए तुम कोई विशेष सुझाव दे सकते हो ?''

''मुझे जिन समस्याओं को हल करना है, प्रत्येक समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करके उसके हल के बारे में निश्चित निर्णय पर पहुँचने के बाद ही मैं उसे हल करने का प्रयत्न करूँगा। इसलिए सभी कार्यों को उचित रुप से सुलझाने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती,'' रामभद्र ने कहा ।

इसके बाद केशव स्वामी ने शिवचंद्र को बुला कर उससे भी वही प्रश्न किया जो रामभद्र से पूछा था । इस पर शिवचंद्र ने कहा, ''मैं किसी जटिल समस्या को हल करने के पूर्व उससे संबन्धित कुछ सही उत्तर सोच लेता हूँ। उनके समाधान प्राप्त होने के बाद ही उस कार्य को अपने हाथ में लेता हूँ ।''

इस प्रकार उन दोनों के उत्तर सुनने के बाद दीवान केशव स्वामी जमीन्दार के पास पहुँचा और उन दोनों के बारे में बताया ।

जमीन्दार ने दीवान की बात सुनकर कहा, ''ये दोनों युवक बड़े ही बुद्धिमान प्रतीत होते हैं । इसलिए इन में से किसी एक का चुनाव करने में आपको शायद कठिनाई हो सकती है ।''

''महानुभाव, ऐसी कोई बात नहीं है । आप शिवचंद्र को मेरे सहायक के रुप में नियुक्त कर सकते हैं,'' दीवान ने कहा ।

''आपने शिवचंद्र का चुनाव किया । क्या इसके पीछे कोई विशेष कारण है ?'' जमीन्दार ने दीवान से पूछा ।

''हाँ, एक कारण अवश्य है । किसी कार्य को हाथ में लेने के पूर्व उसे हल करने में उपस्थित होने वाली कठिनाइयों पर ग ंभीरतापूर्वक विचार करके उनके हल ढूँढना एक समर्थ शासक का लक्षण होता है । यदि हम पहले अपने अन्दर अनेक प्रश्न करलें तो उनके उत्तर ढूँढने में कोई विशेष कठिनाई न होगी । चूँकि शिवचंद्र के अन्दर ये गुण भरपूर हैं, इसलिए मैं समझता हूँ कि वही इस पद के सर्वदा योग्य है,'' दीवान ने उत्तर दिया ।

जमीन्दार यह सुनकर अत्यन्त संतुष्ट हुए और उन्होंने शिवचंद्र को दीवान के सहायक के रुप में नियुक्त किया ।
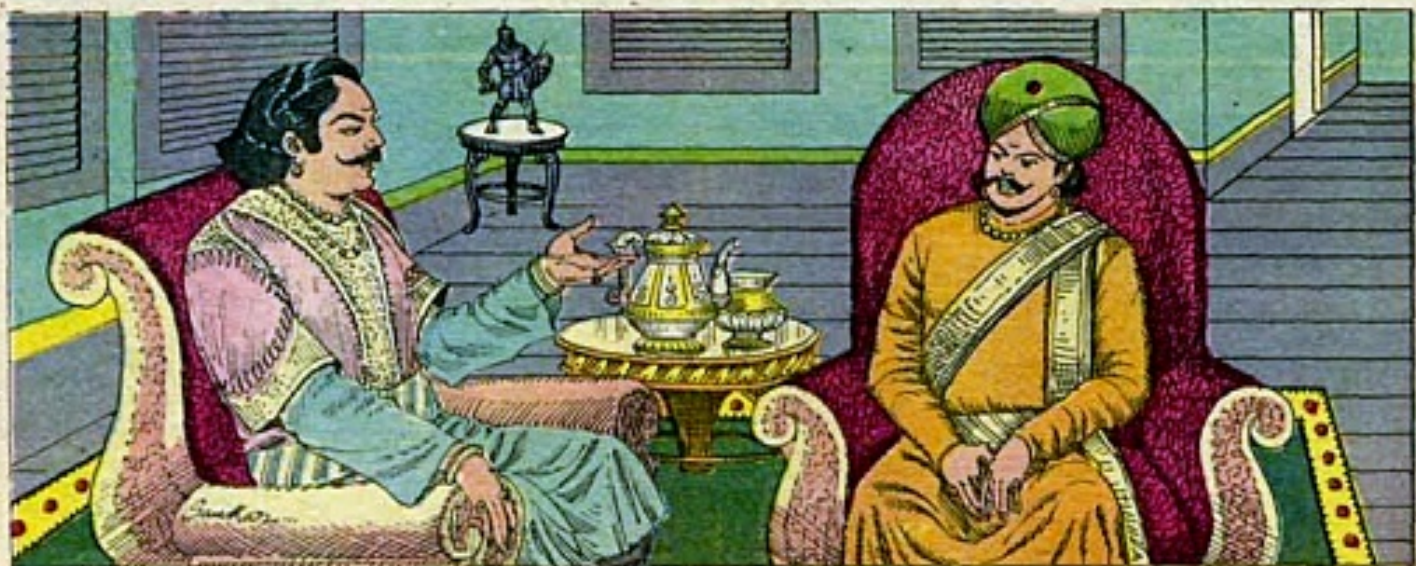
असली-नकली

किसी एक राज्य में सुन्दर खिलौने बनाने वाले कलाकार रहा करते थे। वे पक्षियों के पर, पैरों के नाखून, जानवरों के चमड़ों का उपयोग करके उन खिलौनों में सजीवता डाल देते थे।

एक बार उस राज्य के राजा ने सहज वातावरण को प्रस्तुत करने के विचार से अपने उद्यान में उन खिलौनों की प्रदर्शनी का प्रबन्ध किया। उसे देखने के लिए बहुत से लोग आए। उनमें एक आलोचक भी था। वह पक्षियों तथा जानवरों के पास खड़े होकर उनकी आलोचना करने लगा कि वे खिलौने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक नहीं हैं।

अन्त में उस आलोचक को एक आम के पेड़ पर दो तोते दिखाई पड़े। उनको देखते ही आलोचक ने उसकी व्याख्या की, "तोते की चोंच कैसी लाल होती है! इस प्रकार रंगों की मिलावट न कर सकने वाले ने इन खिलौनों को बनाया है। उसे यह भी नहीं मालूम कि तोतों में किस प्रकार कांच की आँख बिठानी है? उन के पर भी कैसे भद्दे हैं। उन के पैरों के नाखून कैसे अस्वाभाविक हैं!"

इतने में वह जिन तोतों की आलोचना कर रहा था, उनमें से एक पंख फड़फड़ाते हुए उड़ गया। उस समय उसके पंख के लगने से खिलौने वाला तोता डाल पर से धम्म से नीचे गिर पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। इसपर आलोचक की व्याख्या सुनने वाले लोग खिल-खिला कर हँस पड़े। तब आलोचक लज्जा के मारे अपना सर झुका कर वहाँ से चला गया।

गाड़ीवान की सूझ-बूझ

रात के अन्तिम पहर में चार यात्री नौका में नागावली नदी पार करके किनारे पर पहुँचे। उन्हें चार कोस की दूरी पर बसे विक्रमपुर जाना था। घाट पर एक घोड़ा-गाड़ी तैयार खड़ी थी।

यात्री घोड़ा-गाड़ी पर सवार हुए। चारों तरफ घना अन्धकार फैला हुआ था, और जंगल का यह रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। एक जगह थोड़ी दूर पर एक भालू अपने दो बच्चों के साथ रास्ता काटकर खड़ा हुआ और बगल की झाड़ी में दौड़ पड़ा। उसे देख यात्रियों में से एक बोला, "अच्छा हुआ कि भालुओं ने हम पर आक्रमण नहीं किया। मुझे ऐसा लगता है कि रात के समय यात्रा करने से बढ़कर कोई मूर्खता पूर्ण काम नहीं होता।"

इस के बाद दूसरे यात्री ने गाड़ीवाले को गाड़ी रोकने का आदेश दिया। गाड़ी के रुकते ही वह गाड़ी पर से कूद पड़ा और वस्त्रों में से धक्-धक् चमकने वाली तलवार खींच कर गरज उठा, "इस शेर सिंह का नाम तुम लोगों ने सुना होगा। मैं इन भालुओं और बाघों से कहीं अधिक खतरनाक आदमी हूँ। इन चारों तरफ के जंगलों और पहाड़ी प्रदेशों में मेरे आदेश का कोई विरोध नहीं कर सकता। मेरा आदेश पाते ही जो लोग अपना धन और आभूषण मेरे हाथ सौंप देते हैं, मैं उनकी कोई हानि नहीं करता। लेकिन जो लोग अपना धन व आभूषण देने में विलम्ब करते हैं या दूसरों से सहायता पाने के लिए पुकारते हैं, उनको मैं अपनी तलवार के घाट उतार देता हूँ। तुम लोगों ने मेरी बात सुन ली है न? तुम लोग इसी समय अपना धन और उंगलियों में चमकने वाली सोने की अंगूठियों को उतार कर यहाँ पर रख दो।" यह कह कर उसने जमीन पर एक अंगोछा बिछा दिया।

शेष तीनों यात्री थर-थर कांप उठे और अपना धन व सोने के आभूषण डाकू के हाथ

सौंपने को तैयार हो ही रहे थे कि गाड़ीवाला अपने हाथ का कोड़ा हवा में झटक कर गरज उठा, "अरे लुटेरे शेरसिंह तुम्हीं हो ? तुम जब गाड़ी पर सवार हो रहे थे, तभी मैंने तुम्हारी कुदृष्टि को भांप लिया था। फिर भी मैं अपनी शंका का समाधान पाने के लिए चुप रहा। मैं पार्वतीपुर के जमीन्दार के द्वारा तुम को बन्दी बनाने के लिए भेजा गया भेदिया हूँ। आज तुम मुझसे बच कर नहीं जा सकते।" यह कह कर वह शेर सिंह की ओर बढ़ा।

भेदिये का नाम सुनते ही डाकू घबरा गया और थर-थर कांप उठा। यह देखकर शेष तीनों यात्रियों का साहस बढ़ गया और उन्होंने अवसर पाकर अचानक डाकू पर हमला करके उसको बुरी तरह से पीटा। गाड़ी वाले ने रस्से से शेरसिंह के हाथ-पैर बांध दिये। इसके बाद चारों ने मिल कर उसको उठा कर गाड़ी में डाल दिया। फिर गाड़ी विक्रमपुर की ओर चल पड़ी।

रास्ते में यात्रियों में से एक बोला, "इसका अर्थ यह हुआ कि राहगीरों को लूटने वाले इस डाकू को पकड़ने के लिए आपको गाड़ी हाँकने वाले का वेश धारण करना पड़ा। यह बात आपने हमें पहले ही बता दी होती तो हम इस प्रकार डर नहीं जाते।"

"ऐसी अवस्था में यह शेरसिंह मेरे हाथों बन्दी नहीं हुआ होता। चाहे जो हो, आज मैंने इस डाकू का खेल समाप्त किया," गाड़ीवाला उत्साह में आकर बोला।

गाड़ी विक्रमपुर पहुँची। गाड़ीवाले ने कोतवाल के घर के सामने गाड़ी रोककर

दरवाज़े पर दस्तक दी। कोतवाल घर से बाहर निकला और शेरसिंह को देखकर बोला, "तुम्हारी गाड़ी में यात्रा करने वाले लोग अत्यन्त साहसी और पराक्रमी मालूम होते हैं। आखिर इसको बन्दी बना पाये। मैंने इसको पकड़ने के लिए अनेक युक्तियाँ की, पर इसको पकड़ न पाया। मुझे तुम लोगों की वीरता से बड़ी प्रसन्नता हुई।"

कोतवाल के मुँह से यह बात सुनते ही यात्री तपाक से बोले, "हुज़ूर, इस डाकू को पकड़ने की हिम्मत हमारे अन्दर कहाँ है? गाड़ीवाले के रूप में रहनेवाले पार्वतीपुर के ज़मीन्दार के भेदिये ने पहले इसको डराया, तब हमारी हिम्मत बंध गई और हम शेर सिंह पर टूट पड़े। इन्होंने हमारे धन और सम्पत्ति की रक्षा की। इसलिए सवेरा होते ही हम उचित रुप से इनको पुरस्कार देंगे।"

ये बातें सुनकर कोतवाल विस्मय में आ गया। उसकी समझ में नहीं आया कि असली बात क्या है। वह वास्तविकता जानने के लिए उत्सुक हो उठा और गाड़ीवाले से बोला, "अरे, लखन सिंह! यह कैसी बात है? तुम भेदिया कब से बन गये हो?"

इसपर गाड़ीवाले ने सारा वृत्तान्त कोतवाल को सुनाया और कहा, "हुज़ूर, हम चार लोग थे, चाहे कोई बड़ा ही दुष्ट, डाकू या लुटेरा क्यों न हो, एक को बन्दी न बना सकना हमारे लिए लज्जा की बात है न? इसलिए मैंने भेदिये का नाटक रचा। अब इस डाकू को तो पता नहीं था कि मैं कौन हूँ। घबराहट में वह मेरी बात को सच मान-कर मुझे भेदिया समझ बैठा। बस यह अवसर पाकर हमने तुरन्त इसको बन्दी बना लिया।"

कोतवाल ने गाड़ीवाले लखन सिंह की युक्ति की बड़ी प्रशंसा की।

यह समाचार सुनकर पार्वतीपुर के जमीन्दार ने दूसरे दिन भरी सभा में लखन सिंह की सामयिक सूझ-बूझ और हिम्मत की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसे बहुमूल्य पुरस्कार देकर उसका सम्मान किया।

पाप का फल

ब्रह्मदत काशी राज्य पर राज्य करते थे। उन दिनों में बोधिसत्व ने सुतनु नाम से एक गरीब किसान के रूप में जन्म लिया। बड़ा होने पर सुतनु अपनी कमाई से अपने माता-पिता का भरण-पोषण करने लगा। थोड़े दिन बाद उसके पिता का देहान्त हो गया। वह सारा दिन मेहनत करके जो कुछ कमाता, वह उसके और उसकी माता के लिए पर्याप्त न होता था।

उस देश के राजा को शिकार खेलने का बड़ा शौक था। वह अकसर जंगल में जाकर जंगली जानवरों का शिकार खेला करता था। एक दिन राजा एक हिरण का पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया और उस पर तीर चलाया। तीर की चोट खाकर हिरन मर गया। समीप में राजा का कोई भट न था। इसलिए वह उस हिरन को अपने कन्धे पर डाल वापिस लौटने लगा।

दुपहर का समय था। कड़ी धूप पड़ रही थी। शिकार खेलने तथा हिरन को ढोने से राजा थक गया था। उस अवस्था में उस को एक एक विशाल वट वृक्ष की छाया बड़ी सुखद प्रतीत हुई। राजा ने हिरन के शरीर को पेड़ की छाया में डाल दिया और आराम करने के लिए लुढ़क पड़ा।

दूसरे ही क्षण राजा के सामने एक ब्रह्म राक्षस प्रत्यक्ष हुआ और उसकी ओर बढ़ते हुए चिल्ला उठा, "मैं तुम्हें खा जाऊँगा।"

"तुम कौन हो ? मुझे खाने का तुम्हें क्या अधिकार है ?" राजा ने ब्रह्म राक्षस से पूछा।

"मैं एक ब्रह्म राक्षस हूँ। यह वृक्ष मेरा है। इस की छाया में जो आ जाता है, इस पेड़ के नीचे की ज़मीन पर जो पैर रखता है, उन सब को खाने का मुझे अधिकार है," भूत ने कहा।

राजा ने गंभीरता पूर्वक विचार किया, कुछ युक्ति सोची और ब्रह्म राक्षस से पूछा, "तुम केवल आज के लिए आहार चाहते हो या

प्रतिदिन तुम्हें आहार चाहिए ?"

"मुझे तो प्रतिदिन आहार चाहिए," ब्रह्म राक्षस ने झट उत्तर दिया ।

"तब तो यदि आज तुम मुझे खा लोगे तो तुम्हारे आहार की समस्या हल न होगी । यदि तुम इस समय इस हिरन को खा कर मुझे छोड़ दोगे तो मैं तुम्हारे प्रतिदिन के आहार की समस्या को हल कर दूँगा । मैं इस देश का राजा हूँ । इसलिए प्रतिदिन तुम्हारे पास अन्न के साथ एक आदमी को भी भेज सकता हूँ," राजा ने सुझाया ।

यह सुझाव सुनकर ब्रह्म राक्षस बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "तब तो तुम्हें छोड़ देता हूँ परन्तु एक शर्त पर ! जिस दिन मुझे समय पर आहार न मिला, उस दिन मैं स्वयं आकर तुम्हें खा जाऊँगा ।"

इस के बाद राजा हिरन को ब्रह्म राक्षस के हाथ सौंप कर अपनी राजधानी को लौट गया और अपने मंत्री को सारा वृतान्त सुनाया ।

मंत्री ने राजा को समझाया, "महाराज, आप चिन्ता न कीजिए । हमारे कारागार में बहुत से क़ैदी हैं । उनमें से प्रतिदिन एक को ब्रह्म राक्षस के आहार के रुप में भेज दूँगा ।"

उस दिन से मंत्री प्रतिदिन एक क़ैदी को जंगल के बरगद के पास अन्न के साथ भेजता रहा और ब्रह्म राक्षस उस क़ैदी को खाता रहा । यह क्रम बराबर चलता रहा ।

थोड़े दिन बाद सब क़ैदी समाप्त हो गये । मंत्री घबरा गया । उस की समझ में न आया कि क्या किया जाय ? उसने सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवाया, "जो आदमी खाना लेकर जंगल में रहने वाले भूतों के बरगद के पास जाएगा, उसको राजा एक हज़ार रुपये पुरस्कार देंगे ।"

यह ढिंढ़ोरा सुन कर सुतनु ने सोचा, "वाह ! यह कैसे आश्चर्य की बात है ! मैं हड्डी तोड़ मेहनत करूँ तो भी तांबे के चार सिक्के हाथ नहीं लगते । परन्तु ब्रह्म राक्षस का आहार बन जाने पर मुझको इतने सारे रुपये हाथ लग जायेंगे ।"

यह विचार करके सुतनु ने अपनी माँ से कहा, "माँ, मैं एक हज़ार रुपये लेकर भूतों वाले बरगद के पास खाना ले जाऊँगा । उस धन से तुम्हारी सारी जिन्दगी आराम से कट

जाएगी ।"

"बेटा, इस समय मुझे किस बात की कमी है ? मैं तो सुखी हूँ। मुझे उस धन का क्या करना है जिसे पाने के लिए अपना बेटा खोना पड़े ? लगता है तुम्हारी मति मारी गई है। क्या तुम्हें यह बात समझ नहीं आई कि वहाँ जाने पर वह राक्षस तुम्हें खा जायेगा ? नहीं, तुम्हें कहीं जाने की कोई आवश्यकता नहीं है," सुतनु की माँ ने कहा ।

"माँ, मुझे कोई खतरा न होगा। मैं कुशलता पूर्वक घर लौट आऊँगा, इस प्रकार सुतनु अपनी माँ को समझा कर राजा के पास चला गया ।

उसने राजा से कहा, "महाराज यदि आप अपने जूते, छतरी, तलवार और सोने का एक पात्र मुझे दिलवाएँ तो मैं जंगल में रहने वाले भूतों के बरगद के पास आहार ले जाऊँगा ।"

"खाना ले जाने के लिए इन सारी चीज़ों की क्या आवश्यकता है ?" राजा ने पूछा ।

"ब्रह्म राक्षस को हराने के लिए !" सुतनु ने झट उत्तर दिया ।

इस के बाद सुतनु ने तलवार धारण की, जूते पहने, हाथ में छतरी ली और सोने के पात्र में अन्न लेकर दुपहर तक भूतों के बरगद के पास पहुँचा। पर वह पेड़ की छाया में न पहुंच कर उससे थोड़ी दूर पर छतरी की छाया में खड़ा रहा

ब्रह्म राक्षस उसकी प्रतीक्षा करता रहा। जब काफ़ी समय तक वह पेड़ के नीचे नहीं आया तो राक्षस असमंजस में पड़ गया। आज तक तो

कभी ऐसा नहीं हुआ था। अन्त में उसने सुतनु से कहा, "तुम इस धूप में काफी दूर चल कर आये हो। छाया में आकर विश्राम कर लो ।"

"नहीं, मुझे तुरन्त वापिस लौटना है । यह लो, तुम्हारे लिए खाना लाया हूँ।" यह कह कर सुतनु ने सोने के पात्र को धूप में एक जगह रख दिया और तलवार से उस पात्र को पेड़ की छाया में ढकेल दिया ।

सुतनु के इस व्यवहार पर ब्रह्म राक्षस झल्ला गया और क्रोध में आकर हुँकार उठा, "मैं आहार के साथ आहार लाने वाले को भी खा लेता हूँ। क्या तुम्हें यह बात नहीं पता है ?"

"लेकिन याद रखो, तुम मुझे नहीं खा सकते। मैं तुम्हारे पेड़ की छाया में नहीं आया

हूँ । इसलिए तुम को मुझे खाने का क्या अधिकार है ?" सुतनु ने पूछा ।

"यह तो सरासर धोखा है, दगा है। मेरा तो राजा के साथ यह समझौता है कि प्रतिदिन आहार के रुप में मुझे एक आदमी भी मिलेगा। आज तुम यह नियम तोड़ रहे हो । लगता है इसमें राजा की को या तो कोई चाल है या वह अपने ही किये हुए समझौते को तोड़ना चाहता है ! वास्तव में तुम्हारे साथ मेरा काम ही क्या है ? मुझे राजा को दिखाना होगा कि वचन तोड़ने से क्या हो सकता है । आज मैं सीधे जाकर उस राजा को ही खा डालूँगा !" ब्रह्म राक्षस ने झल्ला कर कहा ।

"तुमने किसी जन्म में महान पाप करके इस प्रकार राक्षस का जन्म धारण किया है। इसी के परिणाम-स्वरुप भूत बनकर इस बरगद के आश्रय में रहते हो । ऐसा नीच जीवन बिताते रहने पर भी तुम्हारी बुद्धि अभी तक ठिकाने नहीं लगी । अब भी सही, अपने मन को बदल डालो ।" इस प्रकार सुतनु ने ब्रह्म राक्षस को डांट दिया ।

इस पर ब्रह्म राक्षस सोच में पड़ गया । सुतनु की बात ने उसे बहुत प्रभावित किया परन्तु वह अपने स्वभाव और परिस्थितियों के कारण असमर्थ था । अन्त में उस ने चिन्तित स्वर में पूछा, "बताओ, मैं क्या करूँ ? इससे अच्छा जीवन बिताने का क्या रास्ता है ?"

"तुम मेरे साथ चल कर हमारे नगर के द्वार पर निवास करो । वहाँ पर प्रतिदिन मैं तुम्हारे लिए सात्विक आहार भिजवाने का प्रबन्ध करूँगा । तुम मानवों को नोच-नोच कर खाने की अपनी बुरी आदत छोड़ दो," सुतनु ने समझाया ।

ब्रह्म राक्षस ने ऐसा ही किया ।

सुतनु को प्राणों के साथ लौट कर आया हुआ देखकर राजा विस्मय में आ गए। इस पर उसने सारा वृतान्त राजा को सुनाया। राजा ने परमानन्दित होकर सुतनु को अपना सेनापति नियुक्त किया और उसकी सलाह से सुखपूर्वक राज्य-शासन करने लगे ।

श्रद्धांजलि—दिवंगत नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी को

"इस बीच जबकि तुम आनन्द भवन में बैठी हो और तुम्हारी माँ मलक्का जेल में बैठीं हैं, और मैं इधर नैनी जेल में हूँ, तब हम कभी-कभी एक दूसरे को बहुत याद करते हैं, करते हैं ना ? मगर सोचो उस दिन का जब हम तीनों फिर मिलेंगे ! मैं इस दिन का इन्तज़ार करूँगा, और यह सोचकर मेरा मन खुशी से झूम उठता है ।"

यह पत्र एक पिता ने अपनी पुत्री को लिखा था जिसकी माँ भी जेल में थी। पिता जवाहरलाल नेहरु थे और पुत्री थी इन्दिरा प्रियदर्शिनी जिनका जन्म १९ नवम्बर १९१७ को हुआ और जो बाद में बड़ी होकर श्रीमती इन्दिरा गांधी के नाम से प्रसिद्ध हुईं । वे भारत की प्रधान मंत्री बनीं और बीसवी शताब्दी की बहुत जानी-मानी नेता !

यह बात सच है कि इन्दिरा प्रसिद्ध व्यक्ति मोतीलाल नेहरु की पोती और उस समय के प्रख्यात नेता जवाहरलाल नेहरु की सुपुत्री थीं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे ऐशो-आराम के वातावरण में पैदा हुई थीं। वो दिन बहुत कठिन थे। उनके पिता की एकमात्र इच्छा थी कि भारत को स्वतंत्रता दिलवायें और इसमें उनकी कोमल एवं करुणामयी माँ ने सदैव पति का साथ दिया। यह प्रकट है कि अपने माता-पिता की इकलौती पुत्री के लिए ऐशो-आराम नहीं बल्कि तनाव और परेशानियाँ थीं ।

१९३६ में इन्दिरा की माँ कमला नेहरु का साया उनके सर से उठ गया। इसके बाद वे अपने पिता की देख-भाल में जुट गईं और १९६४ तक उनके साथ रहीं। १९६४ में उनके पिता का देहान्त हो गया। इन्दिरा ने अपने पति फ़ीरोज़ गांधी और दो पुत्र राजीव और संजीव की जिम्मेदारी के साथ-साथ अपने पिता की भी देखभाल की। वे जवाहरलाल नेहरु के हमेशा साथ रहीं, उनकी देख-रेख की, उनकी सहायता की, जिसके कारण वे भारत, एशिया और समस्त विश्व को बहुत कुछ दे पाये ।

अपने पिता के साथी के रुप में उन्हें सांसारिक विषयों का ज्ञान एवम् अनुभव प्राप्त हुआ। साहस और
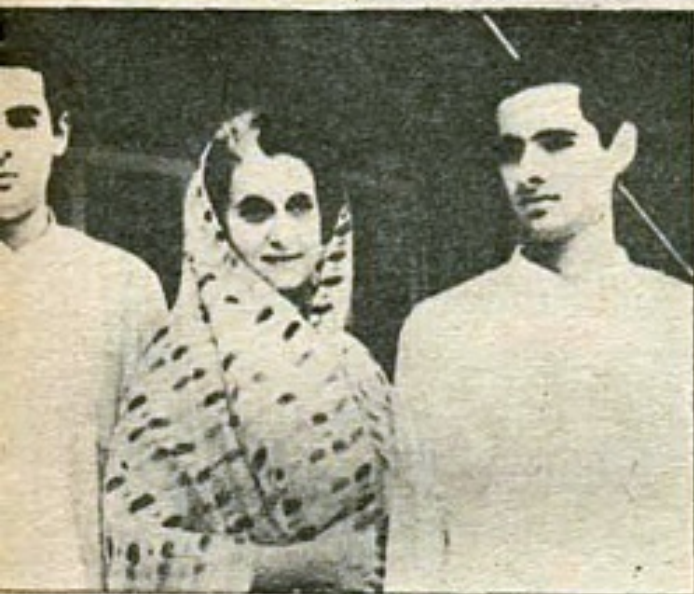
देश-प्रेम उनके महान् गुण थे । जिस शांति और संयम के साथ उन्होंने अपने पति और छोटे पुत्र की मृत्यु के महान् दुःख को सहा उसका उदाहरण मिलना कठिन है। इसी प्रकार का संयम उन्होंने राजनीतिक और राष्ट्रीय संकट की घड़ियों में भी बनाये रखा ।

३१ अक्तूबर १९८४ को वे अपने देश के लिए शहीद हो गईं । उन्हें सबसे प्यार था, विशेषकर बच्चों से । इसलिए यह प्राकृतिक था कि उन्हें चन्दामामा पसन्द हो। एकबार उन्होंने यह संदेश दिया था, ''हमारे बच्चों को उन पुस्तकों और पुस्तिकाओं की आवश्यकता है जो प्रकृति के रहस्यों और जीवन्त ब्रह्मांड के विचारों को उनके सामने रखें । यह बहुत आवश्यक है कि जो कुछ बच्चों के लिये लिखा जाए वह ऐसा हो जो उनकी कल्पना शक्ति और संस्कृति एवं ज्ञान के प्रति लगाव को जाग्रत करे और उन्हें अपने समाज और संसार में प्रेम और सद्भाव से रहना सिखाये । 'चन्दामामा' की भविष्य में भी सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएँ ।''

कुछ समय उपरान्त जब उन्हें पता चला कि 'चन्दामामा' का संस्कृत अंक भी निकलने वाला है तो उन्होंने यह शुभ संदेश भेजा, ''संस्कृत न केवल हमारी संस्कृति का अमर स्रोत है बल्कि हमारी सब प्रान्तीय भाषाओं की जननी है । अधिक से अधिक युवावर्ग को इसकी महत्ता को समझना चाहिए । 'चन्दामामा' के संस्कृत अंक के लिए मेरी शुभकामनाएँ ।''

अब वे हमारे बीच नहीं हैं; परन्तु उनके विचार, उनके आदर्श, राष्ट्र के प्रति उनका अटूट प्रेम, साधारण से साधारण व्यक्ति के प्रति भी उनका अनुराग और विश्व शान्ति में अटूट विश्वास एवं श्रद्धा हमारे लिए सदैव ध्रुवतारे की भांति जीवित रहेंगे । हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर राष्ट्र सेवा करें और संसार को एकता के सूत्र में बांधने का अथक प्रयास करें ।

Photographs: Courtesy 'Hindustan Times'

स्वतंत्रता का संग्राम

हमारा विशाल भारत देश प्राचीन संस्कृति व सभ्यता के लिए प्रख्यात है। इस पर कुछ विदेशी शासन करने लगे। उनसे मुक्ति पाने के लिए सारे देश में एक नई चेतना और जागृति की लहर व्याप्त हो गई। इंगलैंड में पढ़ने वाले कुछ भारतीय युवकों ने 'लोटस एण्ड द डागर' नामक संस्था की स्थापना की और देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करने लगे।

उन दिनों में महाराष्ट्र में ताऊन की बीमारी फैल गई। उस समय ब्रिटिश सिपाहियों ने जनता को सताया और अपमानित भी किया। इसके विरुद्ध बालगंगाधर तिलक (१८५७—१९२०) ने एक जबर्दस्त आन्दोलन आरम्भ किया। वे अचिर काल में ही भारतीय जनता के प्रेम व सद्भाव के पात्र बने और बहुत बड़े नेता बन गये।
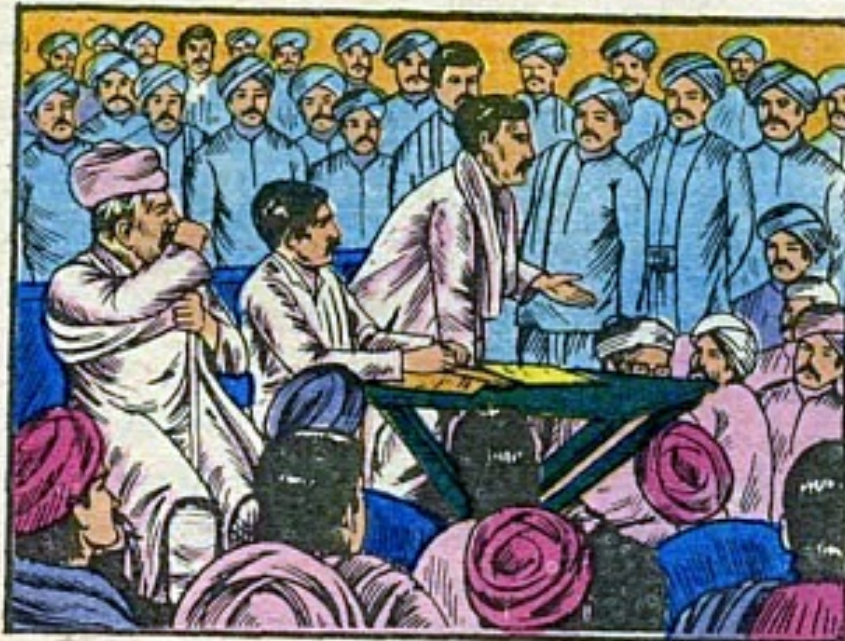
१९०६ में सूरत में राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा का अधिवेशन हुआ। उस सभा में श्री तिलक व अरविन्द घोष ने यह प्रस्ताव रखा कि भारत को संपूर्ण रुप से स्वयं शासन करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। लेकिन कुछ नेताओं ने इस प्रस्ताव का समर्थन करने में संकोच किया। इस पर श्री अरविन्द की अध्यक्षता में एक अलग समारोह हुआ जिसमें श्री तिलक ने अपना यह प्रस्ताव रखा।

अल्पकाल में ही श्री अरविन्द गरम दल के नेता बन गए। उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, पंचायतों के द्वारा झगड़ों को हल करना, राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की स्थापना, जनता की फौज, इत्यादि नारों के द्वारा ब्रिटिश शासन का घोर विरोध किया। फलतः ब्रिटिश सिपाही उग्रदल के समर्थकों पर हमला करके बुरी तरह से उनको सताने लगे।

सन् १९२० में श्री अरविन्द ने राजनैतिक क्षेत्र को त्याग कर आध्यात्मिक जीवन को अपनाया। फिर भी उसके पूर्व उन्होंने जो सिद्धान्त रुपादित किये थे, उन्हीं के द्वारा क्रान्ति जाग्रत हुई। क्रांतिकारी चेतना स्वतंत्रता के आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई। क्रांतिकारी नेता बाघा जतीन और उनके अनुचरों ने बालासोर के पास ब्रिटिश सेनाओं के साथ लड़कर प्राण त्याग दिये।

कनाडा में बसने वाले पंजाबियों ने स्वातंत्र्य संग्राम हेतु गदर पार्टी नामक एक संस्था स्थापित की। ३७२ भारतीय यात्रियों के साथ कोमगटमारु नामक जहाज़ वावानवर नामक बन्दरगाह के पास पहुँचा तब इस शंका से उसको बन्दरगाह में प्रवेश नहीं करने दिया गया कि उसके अन्दर गदरपार्टी के क्रान्तिकारी लोग हैं। इस पर वह जहाज़ कलकत्ता लौट आया और जब यात्री जहाज़ से उतरे तब उन पर ब्रिटिश पुलिस ने गोलियाँ चलाईं।

दक्षिण अफ्रीका में गान्धी जी ने ब्रिटिश लोगों की दमन नीति एवं अत्याचारों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी । वे १९२४ में भारत लौट आए । उन्होंने अहिंसा के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए "सत्याग्रह" नामक एक पद्धति का प्रतिपादन किया । बिहार के चंपारन जिले के कृषक मजदूरों का संगठन करके वहाँ के गोरे निलहे व्यापारियों के अत्याचारों का सामना किया ।
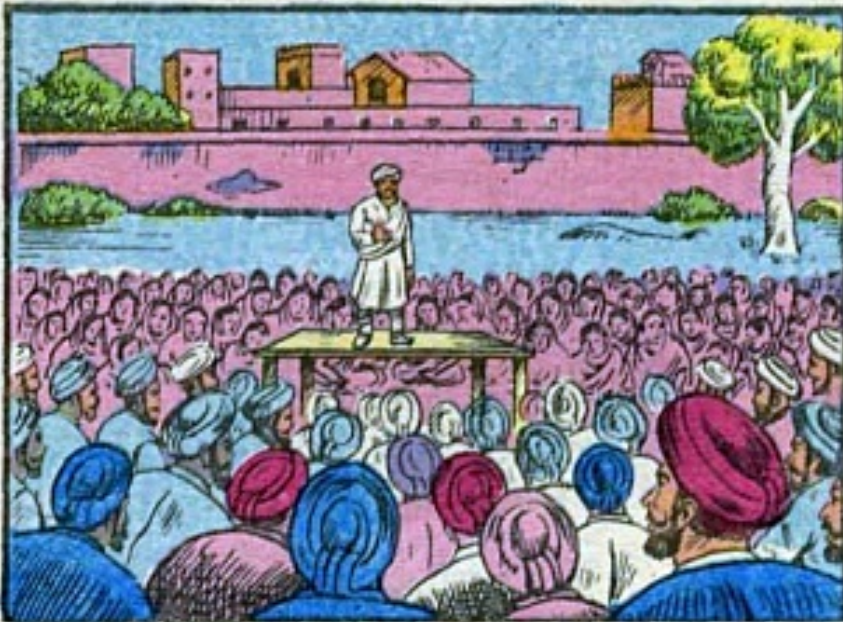
स्वातंत्र्य संग्राम के कुछ नेताओं को क़ैद किया गया, इस पर शांतिपूर्वक अपनी असम्मति प्रकट करने के लिए तेरह अप्रैल १९२९ को अमृतसर के जलियाँ-वाले बाग में हज़ारों की संख्या में लोग एकत्रित हुए । उनमें औरतें और बच्चे भी काफी संख्या में थे । उस समय अमृतसर जनरल डायर नामक ब्रिटिश सेनाधिकारी के शासन में था ।

वहाँ पर सभा करने के लिए पहले तो ब्रिटिश अधिकारी ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई । पर अचानक जनरल डायर शस्त्रधारी नब्बे सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा और किसी प्रकार की पूर्व चेतावनी के बिना उस सभा में एकत्रित जनता पर गोलियाँ चलाईं । अधिकारिक रुप से यह समाचार दिया गया कि उस गोलीकांड में ३६९ लोग मरे और १२०८ लोग घायल हो गये ।
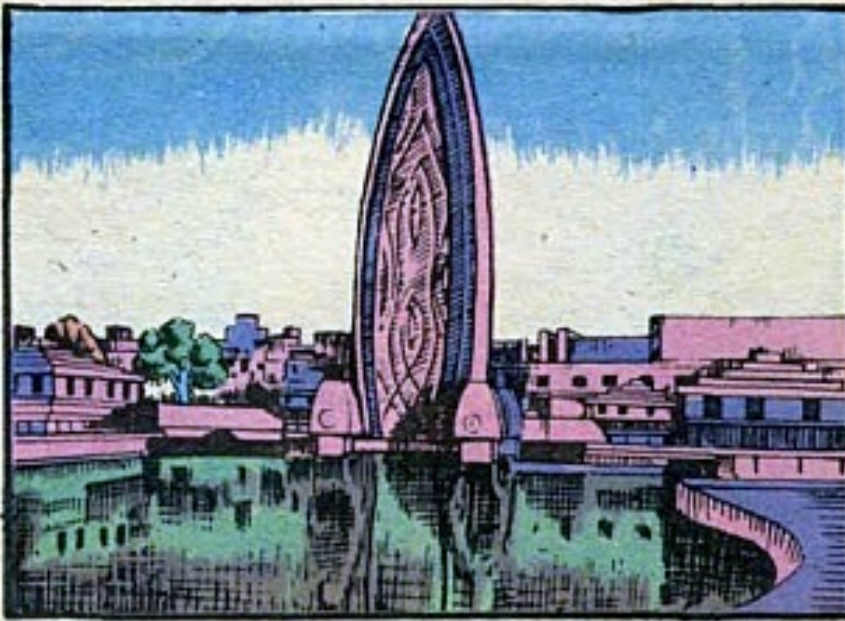
जलियाँ वाले बाग का हत्याकांड जहां पर हुआ था, वहाँ पर इस समय शहीदों का स्मारक बना हुआ है । देश की स्वतंत्रता के हेतु लड़ाई लड़ने वाले सभी धर्मों व सभी प्रदेशों के हज़ारो वीरों के प्राण त्याग के प्रति हमने जो आदर दिखाया और श्रद्धा प्रकट की, उसके चिह्न के रुप में वह स्मारक आज भी हमें स्मरण दिला रहा है ।

स्वतंत्रता के अनेक प्रख्यात योद्धा उन दिनों में अनेक बीमारियों से ग्रस्त अण्डमान टापुओं पर भेजे गये । वहाँ पर ये लोग अनेक प्रकार की बीमारियों के शिकार बन गये और वहीं पर अपने प्राण खो बैठे ।
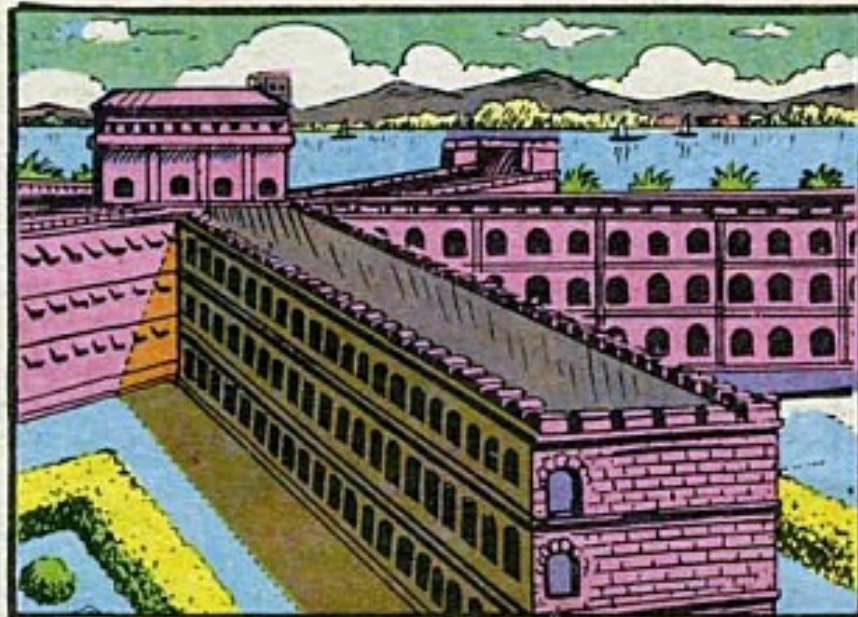
इस बीच गान्धीजी स्वतंत्रता आन्दोलन के अग्रगामी नेता बनकर आये । उनके आगमन के साथ आन्दोलन ने नया मोड़ लिया । नमक तैयार करने वाले गरीबों पर भी ब्रिटिश सरकार ने कर लगाया । इस पर गांधी जी का आदेश पाकर हज़ारों लोगों ने नमक-शुल्क का विरोध किया और अनेक स्थानों पर नमक सत्याग्रह करके बन्दी बने । वे अनेक प्रकार की यातनाओं के शिकार बने ।

सुखी कौन है ?

प्राचीन काल में मालव देश पर पुष्कल नामक एक महान राजा राज्य करते थे। वे बड़े भोग विलासी थे। इसलिए उनकी मुखस्तुति करने वाले लोग सदैव उनकी झूठी प्रशंसा में कहा करते थे, "महाराज, आप के ऐश्वर्य के सामने देवराज इंद्र का ऐश्वर्य भी फीका है। आपके कोशागार से कुबेर के कोशागार की भी कोई तुलना नहीं हो सकती। इस संसार में सुखी कौन है ? यह प्रश्न उठने पर सर्व प्रथम महाराजा पुष्कल का नाम लेकर उसके बाद ही दूसरों का नाम लेना होगा।" यों झूठी प्रशंसा करके वे अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते थे। उनकी प्रशंसा पर विश्वास करके राजा अपने मन में सोचा करते थे, "शायद मेरे जैसा भोगी व सुखी इस संसार भर में कोई दूसरा नहीं है।"

एक बार राजदरबार में ज्ञानधनी नामक एक महात्मा आये। उनकी महानता के बारे में राजा ने पहले ही सुन रखा था। इसलिए उनके आगमन पर राजा ने कहा, "महात्मा, आपके आगमन से मेरा राज्य पवित्र हो गया है।" यह कहकर राजा ने अर्घ्य व पाद्य से उनका अतिथ्य किया और दरबारी गायकों को बुलवाकर संगीत का समारोह किया। कवियों के द्वारा काव्य-पाठ और कुशल नर्तकों के द्वारा भव्य नृत्य-प्रदर्शन का भी आयोजन किया।

ज्ञानधनी यह सब देखकर मौन रहे। महाराजा पुष्कल ने सोचा कि अन्य लोगों की भांति वे भी उनके वैभव की प्रशंसा करेंगे। पर उनको मौन देख राजा का उत्साह ठण्डा पड़ गया। राजा से जब रहा न गया तब वे बोले, "महात्मा, आपने अनेक देशों का भ्रमण किया है। क्या आपको मुझसे बढ़कर कोई सुखी व्यक्ति नहीं दिखाई दिया ?"

इसपर ज्ञानधनी ने कहा, "हमारे गाँव में प्रताप नामक एक आदमी रहा करता था। उस को सबसे अधिक सुखी व्यक्ति कहा जा सकता है।"

२५ वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी

"अच्छा, यह बताइए कि कम से कम उस प्रताप के बाद मेरा नम्बर आ सकता है ?" राजा ने थोड़ा खीझ कर पूछा ।

"नहीं, प्रताप के बाद उसके दो भाइयों का नंबर आता है। वे भी मेरे ग्राम के निवासी थे। वे सुन्दर शारीरिक गठन रखते थे, पवित्र हृदय वाले और परोपकारी थे। अंतिम समय में किसी प्रकार की यातना के बिना दोनों ने अपने प्राण त्याग दिये," ज्ञानधनी ने कहा ।

इसपर राजा नाराज़ हो गये । वे गरजकर बोले, "मैंने यह सोचकर आप के विचार को जानना चाहा कि आप एक महान् व्यक्ति हैं, पर आपके मुँह से ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं ! क्या वे गरीब लोग मुझ से अधिक सुखी हैं ? कोई सुने तो हँसे !"

"प्रताप ? कौन है वह ? मैं ने कभी उस का नाम तक नहीं सुना ! ऐसा अज्ञात व्यक्ति मुझसे अधिक सुखी कैसे हो सकता है ? यह तो आश्चर्य की बात ही कही जाएगी !" राजा ने कहा ।

"यह बात ठीक है कि प्रताप ने आपकी भांति यश प्राप्त नहीं किया, पर वह सुखी अवश्य कहलाया। उसने परिश्रम करके अपना पेट भर पुत्र-पुत्रियों को पाला पोसा, पोतों को गोद में लेकर खिलाया और किसी प्रकार के उतार-चढ़ाव के बिना समरस जीवन व्यतीत किया। अन्त में साठ वर्ष की अवस्था में अपनी मातृ-भूमि के हेतु युद्ध करके वह वीर सद्‌गति को प्राप्त हुआ," ज्ञानधनी ने समझाया ।

ज्ञानधनी मुस्कुरा कर बोले, "राजन, आप क्यों नाराज़ होते हैं ? यह बात ठीक है कि यह ऐश्वर्य और वैभव फिलहाल आपको सुख प्रदान करते है, पर यह मत भूलिये कि इस संसार में कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। कौन कह सकता है कि आप इस प्रकार कितने दिन सुख भोग सकते हैं और अन्तिम समय तक आपका जीवन इसी प्रकार सुखमय होगा ?" यह कह कर ज्ञानधनी अपने रास्ते चले गये ।

"प्रभु, आप इस बूढ़े की दाढ़ी देख धोखा खा गये। इसीलिए उसे सर्वदा अनुचित आदर सत्कार दिया । 'गधा क्या जाने अदरक का स्वाद' कहावत के अनुसार आपके वैभव और सुख के बारे में वह जानता ही क्या है ? संसार

भर मे यदि कोई सुखी है तो वे शत प्रतिशत महाराजा पुष्कल ही हैं। महाराजा पुष्कल की जय !" यह कह कर राजा को चारों ओर से घेरे हुए दरबारियों ने जय-जयकार करके उनको संतुष्ट किया। राजा भी ज्ञानधनी की बातों को एक दुःस्वप्न मान कर भूल गए।

एक वर्ष बीत गया। एक दिन राजा पुष्कल गहरी निद्रा में निमग्न थे। राजा को यह पुकार सुनाई दी, "शत्रु अन्तः पुर में घुस आये हैं! शत्रु आ गये।" वे चौंक कर उठ बैठे। इतने में राजभटों ने आकर कहा, "प्रभु! सामन्त राजा महाबल ने अपनी सेना के साथ दुर्ग को घेर लिया है। हमारे सैनिक उनका सामना तो कर रहे हैं, पर कोई लाभ नहीं होगा।"

दूसरे ही क्षण "महाराजा महाबल की जय !" के नारे लगाते हुए शत्रु सैनिकों को किले में प्रवेश करते हुए राजा पुष्कल ने स्वयं देखा।

पुष्कल ने सोचा कि एक पल भी विलम्ब करने पर प्राणों के लिए खतरा है। यह विचार करके अपनी राजसी पोशाक उतार कर साधारण वस्त्र पहन लिये। इस प्रकार राजा ने अपने प्राण बचाने का प्रयत्न किया। पर इतने में शत्रु सेनापति ने चिल्लाकर कहा, "कोई भागता जा रहा है। उसे पकड़ लो।" इस बीच एक शत्रु सैनिक ने यह समझ कर कि यह कोई साधारण सैनिक है उसका सर काटने के लिए तलवार उठाई। राजा पुष्कल ने सोचा कि अब जिन्दा रहने की बजाय मर जाना ही उत्तम है, यह

विचार करके वे साहस के साथ उसके सामने आकर खड़े हो गये और बोले, "मैं भी देख लूँ, मारो तो सही।"

उस समय राजा के साथ उनका दूसरा पुत्र था जो गूंगा था। उसने अपने पिता पर आने वाले खतरे को देख चिल्लाकर कहा, "ये मेरे पिता महाराजा पुष्कल हैं। इनको मत मारो।" यह अत्यन्त आश्चर्य की बात थी कि उस घबराहट में गूंगे राजकुमार के मुँह से बोल फूट पड़े। राजा का वध करने के लिए तलवार उठाये हुए सैनिक रुक गया और उनको बन्दी बनाकर महाराजा महाबल के सामने खड़ा किया।

महाबल ने सोचा कि शत्रु को जिन्दा रखना

खतरे से खाली नहीं है। उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया, "इनको जिन्दा जला कर मार डालो।"

महाराजा महाबल का आदेश पाकर सैनिक सूखी लकड़ियाँ बीन लाये और चिता बनाई। उसके बीच राजा पुष्कल को खड़ा किया। उस दृश्य को देखने के लिए बहुत लोग इकट्ठे हुए। उनमें वे लोग भी थे, जो इस के पूर्व राजा पुष्कल की झूठी प्रशंसा करते हुए थकते न थे।

पुष्कल ने एक बार अपनी दृष्टि दौड़ा कर चारों तरफ देखा। किला, अन्तःपुर, उद्यान-वन आदि एक-एक करके उनकी आँखों के सामने चल-चित्र की भांति घूम गये। वे यह सोच कर अपनी आँखों से आँसू बहाने लगे, "इस समय इनमें से कोई भी वस्तु मेरी नहीं है! ओह, कैसे इतने अल्प समय में ऐसा परिवर्तन हुआ! महाराजा का वैभव-पूर्ण जीवन बिताकर अन्त में मैं किस प्रकार की दारुण मृत्यु का शिकार बन गया! ज्ञानधनी ने ठीक ही कहा था, 'कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है!' इस बात का निर्णय नहीं किया जा सकता है कि जीवन के समाप्त होने तक सुखी कौन है और दुःखी कौन! ये वाक्य स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं।" राजा यों सोच ही रहे थे कि इतने में चिता में आग लगा दी गई।

राजा अपने उमड़ने वाले दुःख पर नियंत्रण नहीं कर पाये। वे दहाड़ें मार कर रोने लगे, "ज्ञानधनी! ज्ञानधनी!" महाबल ने ये शब्द सुने। उसने पूछा, "ज्ञानधनी कौन है?"

वहाँ पर उपस्थित लोगों ने सारा वृतान्त सुनाया। इस पर महाराजा महाबल सोच में पड़ गया, "यह बात सच है! कौन बता सकता है कि कब किस की अवस्था कैसी होगी? इस क्षण मैं अपने को महान व्यक्ति समझ रहा हूँ, पर न मालूम मेरा भविष्य कैसा है और अगले क्षण में क्या होने वाला है? वास्तव में इस पुष्कल के प्राण लेने वाला मैं कौन होता हूँ?" यों सोच कर वे मन ही मन पश्चाताप करने लगे

इस विचार के आते ही महाराज महाबल ने तुरन्त चिता को बुझवा दिया और पुष्कल के प्राणों की रक्षा की।

न्याय की सम्पत्ति

हरिकिशन बीस वर्ष का युवक था। वह अधिक पढ़ लिख नहीं पाया। पर वार्तालाप करने में बड़ा चतुर था। इस कारण से गाँव के सभी लोग उसी से काम लेते थे। लेकिन हरिकिशन नरम स्वभाव का था। इस कारण से गाँव वाले उसे परिश्रम का उचित मूल्य नहीं चुकाते थे। इसलिए हरिकिशन अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक से नहीं कर पाता था। परिणाम स्वरूप उसे कष्ट झेलना पड़ता था।

उसी गाँव में लक्ष्मी नामक एक लड़की रहा करती थी। हरिकिशन लक्ष्मी पर आकृष्ट था। लक्ष्मी भी हरिकिशन को मन से चाहती थी, लेकिन लक्ष्मी के पिता गंगाधर ने हरिकिशन को बुला कर समझाया, "अरे किशन, तुम तो अत्यन्त संकोचशील हो, इसलिए तुम कभी अपनी पत्नी को सुखी नहीं बना सकोगे। यदि कम से कम तुम्हारे पास सम्पत्ति के नाम पर दो एकड़ जमीन हो, तभी मैं तुम्हारे साथ अपनी लड़की का विवाह कर सकता हूँ।"

गंगाधर के मुँह से यह जवाब सुन कर हरिकिशन चिन्ता में डूब गया। इस पर लक्ष्मी ने हरिकिशन को गुप्त रुप से बुलवाकर समझाया, "तुम घबराओ मत, मेरे पिता तुम से असन्तुष्ट नहीं हैं। अगर तुम मेरे बाबूजी के लिए जरी धोती लाकर दे दोगे तो वे हमारी शादी के लिए अनुमति दे देंगे।" किशन ने तुरन्त उस गाँव के साहूकार के यहाँ पहँच कर एक जरी धोती मांग ली।

साहूकार ने निस्संकोच होकर कहा, "अच्छी बात है, तुम्हें अवश्य एक जरी धोती दे दूँगा, लेकिन इसका दाम चार चांदी के सिक्के होगा। तुम चार सिक्के लेकर आओ।"

इस के पूर्व हरिकिशन ने साहूकार के कई कठिन काम संपन्न किये थे, पर साहूकार ने उसके परिश्रम का उचित मूल्य नहीं चुकाया था,

और न हरिकिशन ने इसपर कोई विशेष ध्यान दिया था । अब वही साहूकार आवश्यकता पड़ने पर चार सिक्के देने से इन्कार कर रहा था।

वह बहुतत दुखी हुआ पर बेचारा कर ही क्या सकता था ! इस के बाद किशन ने गाँव के ऐसे अनेक लोगों के पास जाकर चार चांदी के सिक्के मांगे, पर उनमें से कोई भी उसे चार सिक्के देने को तैयार न हुआ । इस पर हरिकिशन अत्यन्त निराश हो गया । उस दिन से वह पहले से कहीं अधिक परिश्रम करके ठीक से खाये बिना दो सप्ताह के अन्दर चार सिक्के जमा कर पाया ।

इसके बाद वह सीधे साहूकार के घर पहुँचा । उसे चार सिक्के देकर जरी किनारे वाली धोती खरीद ली । यह धोती लेकर हरिकिशन सीधे लक्ष्मी के घर पहुँचा । लक्ष्मी का पिता जरी किनारी वाली धोती देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला, "कई दिन बाद मेरी इच्छा पूरी हुई है । बताओ, तुम्हारी भी कोई इच्छा हो, तो मैं उसे पूरा करुँगा ।" "लक्ष्मी के साथ मेरा विवाह कर दीजिए," हरिकिशन ने झट कह दिया ।

लक्ष्मी का पिता बोला, "हरिकिशन, तुम प्रशंसा के योग्य हो । तुमने मेरे मन को प्रसन्न किया । भगवान अवश्य तुम्हारा भला करेंगे । तुम्हारे साथ विवाह करने पर मेरी बेटी अवश्य सुखी बन जाएगी । मैं कल ही तुम दोनों का विवाह कर दूँगा ।"

लेकिन इस बीच में एक विचित्र घटना घटी । वह यह कि हरिकिशन को जरी किनारेवाली धोती बेचने वाले साहूकार का बेटा इधर कुछ दिनों से बीमार पड़ा हुआ था । उसकी बीमारी का निदान कोई भी वैद्य नहीं कर पाया । इस पर साहूकार एक साधु से मिलने गया ।

साधु ने साहूकार के लड़के की परीक्षा करके कहा, " तुमने जो पाप किये, वे ही तुम्हारे बेटे की बीमारी बनकर तुम्हें परेशान किये हुए हैं । मैं इस बीमारी की दवा दे देता हूँ । पर तुम्हें इसका मूल्य चुकाना होगा ।"

साहूकार ने साधु की बात मान ली । साधु ने तत्काल साहूकार के लड़के को दवा दी । साहूकार ने दवा का मूल्य चुकाया, एक सप्ताह बीत गया लेकिन वह लड़का अस्वस्थ ही रहा ।

उसकी बीमारी दूर नहीं हुई। इस पर साधु को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। साहूकार अपने बेटे की अवस्था देख कर विचलित हो उठा।

उसने साधु के यहाँ पहुँच कर इसका कारण पूछा। तब साधु ने कहा, "तुमने यह धन न्याय पूर्वक नहीं कमाया है। इसीलिए मेरी दवा काम नहीं कर पा रही है।"

"साधु महाराज, बताइये, मुझे अब क्या करना होगा," साहूकार ने चिन्तित स्वर में पूछा।

"न्यायपूर्वक कमाये गये धन देने पर ही मेरी दवा काम कर सकती है। तुम तो महाजन ठहरे! प्रति दिन तुम्हारे पास आकर कई लोग अपना ऋण चुकाते हैं। ऐसे लोगों के नाम याद रख कर प्रत्येक व्यक्ति का नाम लेकर मेरे हाथ देते जाओ। जब न्यायपूर्वक कमाया गया धन मेरे हाथ में आ जायेगा, तब तुम्हारे बेटे की बीमारी तुरन्त ठीक हो जाएगी," साधु ने समझाया।

इस पर साहूकार साधु के कहने के अनुसार अपने कर्ज़दारों में से एक-एक का नाम लेकर उसके द्वारा चुकाया गया धन साधु के हाथ में धरने लगा। पर जब हरिकिशन के द्वारा प्राप्त चार चांदी के सिक्के साहूकार ने साधु के हाथ रखे, तब एक विचित्र घटना घटी। तब तक बेहोश पड़ा हुआ साहूकार का बेटा झट उठ कर बैठ गया।

"यही न्यायपूर्वक कमाया गया धन है। तुमने जिस व्यक्ति से यह धन लिया है, उस को तत्काल वापिस कर दो। यह धन दूसरों के लिए

उपयोगी सिद्ध हो सकता है," साधु ने कहा ।

इस के बाद साहूकार ने तुरन्त वे चार सिक्के हरिकिशन के घर भेज दिये । इस बीच साहूकार के घर उस गाँव का पटवारी आ पहुँचा । साहूकार के लड़के की बीमारी के ठीक हो जाने का समाचार सुन कर पटवारी ने साधु को अपने घर निमंत्रित किया ।

साधु ने पटवारी के घर जाकर उस के लड़के की बीमारी की जांच की, तब कहा, "तुम्हारे किये हुए पाप इस लड़के को बीमारी के रुप में सता रहे हैं । यदि तुम्हारे घर में न्यायपूर्वक कमाया हुआ धन हो तो मेरी यह दवा काम कर सकती है ।" यह कहकर साधु ने उस लड़के के मुँह में कोई भस्म डाल दिया ।

पटवारी ने दवा के मूल्य के रुप में दस सिक्के चुकाये । पर पटवारी का लड़का उसी प्रकार बेहोशी में पड़ा रहा ।

इस पर असन्तुष्ट होकर साधु ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि इस गाँव में किसी के यहाँ न्यायपूर्वक कमाया हुआ धन नहीं है । यह तो बड़ी चिन्ता की बात है ।"

पटवारी ने कहा, "साधु महाराज, साहूकार के लड़के की बीमारी हरिकिशन के धन से ठीक हो गई । मैं भी उस के पास जाकर धन लाऊँगा ।" यह कहकर पटवारी चलने को हुआ ।

तब साधु ने उसे रोककर कहा, "मेरी बातों को ध्यान से सुन लो । हरिकिशन ने साहूकार को चार चांदी के सिक्के दिये हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे न्यायपूर्वक कमाये गये हैं, पर साहूकार ने वह धन हरिकिशन को पुरस्कार के रुप में दिया है । इसलिए अब वह न्यायपूर्वक कमाया गया धन नहीं है । यदि हरिकिशन के पास इसके अतिरिक्त कुछ धन हो तो उसे लेते आओ," साधु ने कहा ।

पटवारी ने हरिकिशन के घर जाकर साधु की कही बातें सुनाईं । हरिकिशन ने चिन्तित होकर कहा, "महाशय, मैं क्या करूँ ? मेरे पास इन चार चांदी के सिक्कों के अतिरिक्त कुछ और धन नहीं है ।"

पटवारी की समझ में न आया कि अब वह क्या करे, कहाँ से न्यायपूर्वक कमाये गये चांदी के सिक्के लाये । लाचार होकर पटवारी किशन से

प्राप्त वे चार सिक्के लेकर साधु के पास पहुँचा और वास्तविक बात बताये बिना वे सिक्के साधु के हाथ में दे दिये ।

साधु के हाथ में चार सिक्कों के गिरते ही पटवारी का बेटा खाट पर से उठ बैठा । उस की बीमारी इस प्रकार अदृष्य हो गई, जैसे कोई जादू फेंक दिया गया हो ।

पटवारी आश्चर्य में आकर साधु से बोला, "साधु महाराज, किशन के धन के अन्दर कोई महिमा है । उसने पहले मुझे बताया कि उस के पास साहूकार से प्राप्त चार सिक्कों को छोड़ कर और अतिरिक्त धन नहीं है । इसीलिए मैंने वही धन लाकर आप को दे दिया ।"

यह बात सुनकर साधु क्रोध में आकर बोला, "मैंने सोचा था कि साहूकार ने दान भावना से प्रेरित होकर पुरस्कार के रुप में धन किशन को दिया है । अन्दाय पूर्वक दूसरों का धन जो लोग अपने पास रखते हैं, उनके घर में ऐसी ही बीमारियाँ हुआ करती हैं । न्यायपूर्वक कमाया हुआ धन ही उन की रक्षा कर सकता है ।" यह कह कर साधु वहाँ से चला गया ।

साधु ने पटवारी को जो चेतावनी दी थी, वह सारे गाँव में फैल गई । तब सब लोग भयभीत हो गये क्यों कि उनमें से अधिकांश लोग हरिकिशन के द्वारा काम लेकर उसको उचित मूल्य नहीं चुकाते थे । अब उन्होंने सोचा कि यदि किशन को उसके कार्य का उचित पारिश्रमिक नहीं दिया तो और अधिक परेशानी होगी । इस कारण से सारे गाँववालों ने आपस में परामर्श करके चन्दा इकट्ठा किया और किशन को एक मकान और दो एकड़ जमीन खरीद कर दे दी ।

उस दिन से किशन और लक्ष्मी परिश्रम करके आराम से अपने दिन बिताने लगे । गांव वालों को भी बीमारी से छुटकारा मिल गया ।

न्यायपूर्वक कमाये गये धन की महिमा को स्वयं अपनी आँखों से देखने के कारण उस गाँव के लोग न्यायपूर्ण पथ पर चलते हुए किसी प्रकार की बीमारियाँ या कठिनाइयों के बिना सुखमय जीवन बिताने लगे ।

बचत का फल

एक बार कमला और उसका पति नारायण वर्मा पड़ोसी गाँव में मांगलिक कार्य में भाग लेने गये। वे जिस दिन घर लौट रहे थे, उस दिन उस गाँव में हाट लगा हुआ था। हाट में तरह-तरह के केलों के घौद सस्ते में बिक रहे थे इसलिए कमला ने मन में एक घौद खरीदने का निश्चय कर लिया।

उसने अपने पति से कहा, "देखो जी, यहाँ पर केले के घौद सस्ते हैं। हम भी एक घौद खरीद कर ले जायेंगे।"

"पूरा घौद खरीद कर हम क्या करेंगे? हमारा तो छोटा सा परिवार है!" नारायण वर्मा ने खीझ कर कहा।

"हम अगर अधपके घौद को खरीद ले जायेंगे तो पंद्रह दिन तक रख सकते हैं। यहाँ पर जो घौद चार रुपये में बिक रहा है, वह हमारे गाँव में दस रुपये से कम नहीं मिलता। तुम्हीं सोच लो, कितना लाभ होगा।" कमला ने सुझाया।

नारायण वर्मा ने मान लिया। कमला ने एक बहुत बड़ा घौद चुन कर खरीद लिया और उसे अपने पति के कन्धे पर रख दिया। चाहे लाभ की बात कुछ भी हो पर उस को उठा ले जाना नारायण वर्मा के लिए जान पर मुसीबत मोल लेने के बराबर प्रतीत हुआ। पर क्या करता? कुछ दूर तक तो वह उसे उठाये चलता रहा पर बाद में उसने मार्ग के मध्य में उस घौद को अपने कन्धे से उतार कर नीचे रख दिया।

नारायण वर्मा आधी दूर तक घौद उठा लाया था, इस बात पर कमला बहुत प्रसन्न हुई क्योंकि हाट से घर तक कोई चीज़ उठा लाने के लिए कुली दो रुपये ले लेता। अब एक रुपया खर्च करके उस घौद को घर पहुँचाया जा सकता था।

रास्ते में जो कुली मिला, उस ने एक रुपया मज़दूरी लेकर घौद को घर पहुँचा दिया। मज़दूरी में एक रुपये की बचत हुई थी, इस पर कमला

नाराय वर्मा

की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा ।

दूसरे दिन से घौद के केले एक-एक करके पकने लगे । वे बहुत ही स्वादिष्ट थे । इस कारण पति-पत्नी जी भर कर खाने लगे । परन्तु इस प्रकार एक ही वस्तु निरन्तर कब तक खाते रहते ? इसलिए धीरे-धीरे उनकी भूख मंद पड़ गई ।

कमला एक दिन अपने पति से बोली, "देखते हो न ? इन केलों की वजह से हमारे खाने के खर्च में भी बचत हो रही है !"

केले खाकर नारायण वर्मा एक दम तंग आ गया था । इसलिए वह बोला, "जो कुछ बचत हुई, वह पर्याप्त है । जो केले बचे हैं, उन्हे अड़ोस-पड़ोस के परिवार वालों को दे दो ।"

पर कमला ने नारायण वर्मा की बात नहीं मानी । उलटे उसने खीझ कर कहा, "इतनी दूर से मेहनत करके जो फल उठा कर लाये हैं, वो क्या पराये लोगों को दान करने के लिए हैं ?"

कुछ दिन बाद घौद में बचे सारे फल एक साथ पक गये । इस पर कमला ने सुझाया, "अजी, दोनों समय खाना खाने के बदले केले ही खा लेंगे ।"

वास्तव में बात यह थी कि कमला घौद का एक फल भी दूसरों को मुफ़्त में नहीं देना चाहती थी । इसलिए दोनों ने खाने के बदले तीन दिन केवल केले ही खाये । अन्त में घौद के सारे फल समाप्त हो गये ।

लेकिन इसका परिणाम् यह हुआ कि वे दोनों बदहज़मी और पेट दर्द के शिकार हो गए ।

नारायण वर्मा ने अपने पत्नी से खीझ कर कहा, "देखती हो न, तुम्हारी आमदनी और

बचत ! इस तरह की बचत करने से क्या लाभ जिसके कारण बीमारी पीछे लग जाये ? इस वक्त इलाज और दवाइयों का खर्च तुम्हारी बचत से कहीं ज्यादा बढ़ गया है । आखिर बदहज़मी और पेट दर्द बच रहे ।"

"यह बात सही है, पर इस की दवा एक ही है—हमारी बदहज़मी के समाप्त होने तक उपवास करना होगा," कमला ने कहा ।

पर नारायण वर्मा ने उस की बात नहीं मानी और कहा, "उपवास के कारण हम कमज़ोर हो जायेंगे । तब इस से दुगुना खर्च होगा । मैं यह पेट दर्द सहन नहीं कर सकता ।" यह कह कर वह वैद्य के घर दौड़ पड़ा ।

वैद्य ने दो रुपये लेकर दवा की कुछ गोलियाँ दे दीं और सवेरे-शाम दो गोलियाँ खाने की सलाह दी । नारायण वर्मा घर पहुँचा और अपनी पत्नी को वैद्य की बात बताई ।

दो दिन में नारायण वर्मा का पेट दर्द गायब हो गया, पर कमला का पेट दर्द बढ़ता गया ।

बात यह थी कि कमला बचत करने की आदी हो गई थी, इसलिए वैद्य की सलाह के अनुसार सवेरे-शाम दो गोलियाँ खाने के बदले वह एक ही गोली खाती रही, यह उस का ही परिणाम था । उसने तो सोचा था कि इस प्रकार कुछ बचत हो जायेगी परन्तु दवा में बचत का फल उसे भोगना पड़ा ।

अन्त में नारायण वर्मा वैद्य को अपने घर बुला लाया । सारी बात सुनकर वैद्य कमला की करनी पर मन ही मन हँस पड़ा और कुछ और गोलियाँ देते हुए बोला, "मैं ये गोलियाँ तुम्हें मुफ़्त में दे रहा हूँ । तुम मेरे बताये अनुसार इस दवा का उपयोग करोगी तो तुम्हारा पेट दर्द जाता रहेगा ।"

बाहर आकर वैद्य ने नारायण वर्मा से कहा कि कमला को यदि यह भ्रम रहेगा कि दवा की गोलियाँ मुफ़्त में मिली हैं तो वह उन्हें उचित अनुपात में खायेगी । इस पर दूसरी बार नारायण वर्मा ने वैद्य को जो शुल्क चुकाया था, यह बात दोनों ने कमला से गुप्त रखी । इस बार कमला ने बराबर वैद्य के बताये अनुसार दवा ली और जल्दी ही अच्छी हो गई ।

विष्णु पुराण

बुद्ध के आगमन पर कपिलवस्तु नगर उनके स्वागत के हेतु बड़ी सुन्दरता से अलंकृत किया गया। नगर वासियों के भीतर अपूर्व आनन्द इस कारण उमड़ रहा था कि विश्व के लिए ज्योति बने भगवान बुद्ध उन्हीं के नगर के निवासी हैं। वास्तव में राजकुमार उनके शासक बनने वाले थे, पर वे समस्त विश्व की मानवता के चक्रवर्ती बन गये। इस बात पर गर्व करते हुए नगर वासियों ने उनके स्वागत के पथ पर फूल बिछाये।

अपने पुत्र का वात्सल्यपूर्ण हृदय से आलिंगन करने के लिए वृद्ध महाराजा शुद्धोदन का हृदय उछलने लगा। कितना समय गुजर गया था। पुत्र को मिलने के लिएं बेकरार थे। पुत्र चाहे बड़ा हो गया हो, मगर इस समय मोह और प्रेम उन्हें फिर से बीते हुए वर्षों की भांति लिपट कर, चुंबन लेने को चाह रहा था।

नगर में बुद्ध का प्रवेश हो रहा था। अर्द्धनिमीलित नयनों से, गंभीर मुखमुद्रा के साथ, निश्चल शांत बदन लिये, करुणा की मूर्ति बन कर पधारने वाले बुद्ध के पीछे असंख्य जनता 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'धम्मं शरणं गच्छामि', 'संघं शरणं गच्छामि' नारे लगाते उमड़ रही थी।

उधर राजमहल में यशोधरा, राहुल तथा महाराजा शुद्धोदन राजमहल की सीढ़ियों से उतर कर बुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे। सारथी चेन्ना राजमहल के प्रांगण में आगे बढ़कर खड़े हो आनन्द के अश्रु बहाते हुए उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। दुःख के अश्रु बह रहे थे बिछोह में

और आनन्द के अश्रु उन्हें एक बार फिर देखकर, और वो भी चक्रवर्ती के रुप में। चेत्रा सारथी तो था ही, साथ ही राजकुमार गौतम का मित्र भी था।

बुद्ध भिक्षा पात्र लिये राजमहल के सामने आये। राहुल ने दौड़ कर अपने पिताश्री के चरणों में प्रणाम किया। अनेक वर्षों के बाद दर्शन देने वाले अपने पतिदेव के प्रसन्न बदन को एकटक देखते हुए यशोधरा खड़ी रही, फिर उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम करके अपने मस्तक को उनके चरणों पर लगाया। उसके नेत्रों का शुभ्र मौक्तिक जैसा बाष्पजल बुद्ध के चरणों को धो बैठा।

बुद्ध का आलिंगन करने के लिए हाथ बढ़ा कर आए हुए महाराजा शुद्धोदन उनके परिव्राजक रुप तथा भिक्षा पात्र को देख दुखित हो निश्चेष्ट रह गये। उस वृद्ध महाराजा का हृदय भिक्षु रुप में लौटे अपने पुत्र को देख तड़प उठा। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। आलिंगन के लिए बढ़े हुए हाथ अचल रह गये

"बेटा सिद्धार्थ! गौतम! यह क्या है? तुम यह क्या कर बैठे?" यों कहकर वे मतिभ्रष्ट व्यक्ति की भांति चीखते-बिलखते, चिल्लाते, पेड़ की भांति नीचे टूट पड़े और बेहोश हो गये।

बुद्ध अपने पिता के सिर को गोद में रखकर अपने वस्त्र से झलने लगे। अपने पुत्र के स्पर्श से शुद्धोदन होश में आ गये। बुद्ध ने कहा, "पिताजी, मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। मैं सिद्धि के सम्पूर्ण अर्थ प्राप्त व्यक्ति के रुप में सिद्धार्थ बन कर लौट आया हूँ।" ये वाक्य शुद्धोदन के कानों में अमृत-तुल्य प्रतीत हुए। उनके अर्द्ध-निमीलित नेत्र ज्योत्सना की किरणें बिखेर रहे थे। बुद्ध के मुख-मण्डल पर दिव्य तेज़ झलक रहा था। किसी अर्निवर्चनीय प्रभाव ने शुद्धोदन को उत्तेजित किया। अशांति से शांति की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा भ्रम से सत्य की ओर उनको वह प्रभाव ले गया। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' शब्द उनके कानों में प्रतिध्वनित हो रहे थे। शुद्धोदन के मुँह से भी ये ही शब्द फूट रहे थे। राहुल भी ये ही शब्द दुहरा रहा था। जनता के मुँह से भी यही वाणी

घोषित हो रही थी। यशोधरा अपने नेत्र मूँद कर वक्ष पर हाथ रखे ध्यान मुद्रा में 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का जाप कर रही थी। समस्त वातावरण में यह ध्वनि गुंजित होने लगी। ऐसा लगने लगा मानो स्थिर वस्तुएँ भी बोलने लगी हों।

इस अवस्था में बुद्ध ने राहुल के सर पर हाथ फेरते हुए कहा, "मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम भी बुद्ध बन कर धर्म तथा संघ का अनुसरण करते हुए मानवता के लिए सार्थकता प्रदान करोगे। जानते हो, बुद्ध का तात्पर्य क्या है? तुम्हारी धारणा के विपरीत केवल मैं ही बुद्ध नहीं हूँ। उत्तम धर्मों तथा अहिंसा का आचरण करने वाले सभी लोग बुद्ध होते हैं। बुद्धत्व ही मानवता है। बुद्धत्व प्राप्त करने वाला मानव ही बुद्ध होता है। ऐसे मानव-जन्म को सार्थक बनानेवाला बुद्ध ही इस जगत के लिए आवश्यक है, प्राणि जगत के लिए शरण्य है। बुद्धों के द्वारा उपदेशित धर्म ही मानव जगत को सच्ची शांति प्रदान करते हैं। धर्म ही इस जगत के लिए शरण्य है। बुद्धों का संघ ही इस विश्व के लिए शरण्य है।"

इसके बाद यशोधरा अपने नेत्र खोलकर बुद्ध की ओर निश्चल दृष्टि प्रसारित करके बोली, "स्वामी! मैं स्वयं को आपके हाथों में भिक्षा के रुप में समर्पित करती हूँ। आज तक मैं एक गृहिणी बन कर रही। इस समय मैं मानव मात्र के सेवा-धर्म के लिए अर्पित एक परिव्राजिका

हूँ। आप के चरण-चिह्नों पर चलते हुए जीवन-यापन करना मेरा धर्म है। इसलिए आप कृपया नारी समाज के लिए भी बौद्ध संघ में समुचित अर्हता एवं स्थान प्रदान कीजिए।" यों निवेदन करके भक्तिपूर्वक यशोधरा ने भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम ,किया।

इस प्रकार यशोधरा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने वाली प्रथम महिला थी।

इसके बाद आनन्दाश्रु बहाते हुए बुद्ध की भगवान के रुप में आराधना करने वाले भाव से हाथ जोड़ कर खड़े हुए चेन्ना को बुद्ध ने देखा और वात्सल्यपूर्वक अपने आलिंगन में लेने को आगे बढ़े। तब चेन्ना झुककर बुद्ध को प्रणाम करने लगा। उसको रोकते हुए बुद्ध बोले,

"चेन्ना, चाहे कोई मनुष्य कितना भी महान बने, पर छोटों को ही बड़ों का आदर करना चाहिए, उनकी पूजा करनी चाहिए। इस समय तुम मेरे लिए पूजनीय हो। मुझे इस कपिलवस्तु नगर से विशाल विश्व में प्रवेश कराने वाले पुण्यात्मा तुम ही हो। तुम्हीं ने मेरे अन्दर ज्ञानोदय किया। मेरा सारा समय तुम्हारे साथ ही गुज़र जाता था। तुम्हीं ने मुझे राजमहल के बाहर की दुनिया से परिचय करवाया। मैं तुम्हारा बहुत अभारी हूँ। मैंने सत्यों व धर्मों का ज्ञान प्राप्त किया, इस आधार पर कोई मुझे भगवान माने या भगवान मानकर मेरी आराधना करे, यह मैं पसन्द नहीं करता। किसी व्यक्ति की आराधना अनुचित है। भगवान मानने की भावना भी कुछ ऐसी ही है। सबसे मुख्य बात तो मानव-धर्म का आचरण करना है।"

बुद्ध के वचन सुनकर अभ्यर्थना के स्वर में चेन्ना बोला, "'बुद्ध भगवान' शब्दों के कहने और मानने में ही हमें संतुष्टि प्राप्त होती है। इसी भावना के कारण धर्माचरण तथा संघ-सेवा के प्रति हमारे हृदय के अन्दर अकुन्ठित भक्ति एवं विश्वास पैदा हो रहे हैं, एक शक्तिशाली संबन्ध जोड़ रहें हैं। इसीलिए भगवान मान कर आपकी आराधना करने की भावना और पुकारने की स्वेच्छा को आप मत रोकिये।"

उस समय से बुद्ध 'बुद्ध भगवान' या 'भगवान बुद्ध' नाम से पुकारे गये। वे बुद्धदेव कहलाये। सच है कि उत्तम मानव ही देव है!

शाक्यवंश के मुट्ठी भर लोगों को छोड़ शेष सबने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। साथ ही बुद्ध के आदेशों एवं उपदेशों का प्रचार किया। वे सब भिक्षु बन गये, अपनी सारी सम्पत्ति संघ को अर्पित कर दी और धर्म-सेवा करने के लिए तैयार हो गये।

देवदत्त आरम्भ से ही बुद्ध का प्रत्यर्थी रहा। उसने ईर्ष्या से प्रेरित होकर बौद्ध धर्म का विरोध किया और बुद्ध के विरुद्ध अपना एक संगठन स्थापित किया।

बुद्ध कपिलवस्तु नगर से चल पड़े। उस समय उनके साथ उनके अनुयायियों एवं शिष्यों में यशोधरा और राहुल भी थे।

वापसी यात्रा में बुद्ध भिक्षु बन कर सुजाता

के घर गये । बुद्ध ने सुजाता के पुत्र को आर्शीवाद दिया और राहुल से कहा, "राहुल, सुजाता का पुत्र तुम्हारा भाई है । तुम दोनों मित्र बन कर, भ्रातृभाव से, जाति एवं वर्ण-भेद से पृथक रहकर विश्व में मानवता तथा 'वसुदैव कुटुम्बकं' की भावना का प्रबोध करो ।"

सुजाता बुद्ध की शिष्या के रुप में यशोधरा के साथ हो गई । बुद्ध ने उन्हें आदेश दिया कि गृहिणियाँ धर्म-निर्वाह करते हुए बौद्ध धर्म का अवलंबन करके बच्चों को उत्तम मानव बनाने वाली माताएँ बनें, इस सन्देश का नारी जगत में प्रचार करके धर्म-संचालन करें ।

बुद्ध ने अपने अनुयायी शिष्यों को धर्म-चक्र का संचालन करने के हेतु चारों दिशाओं में भेज दिया, तदन्तर यशोधरा तथा राहुल को समझाया कि वे दोनों कपिलवस्तु नगर को लौट कर बृद्ध शुद्धोदन की देखभाल करें और शाक्यवंश को धर्म मार्ग पर चलायें । उन लोगों को सही रास्ता दिखाएँ । वे नासमझ हैं, इसलिए ज़रूरी है कि उन्हें धर्म-मार्ग का सही अर्थ बतायें । यह काम बुद्ध ने यशोधरा और राहुल को सौंप दिया ।

इसके बाद बुद्ध अकेले अरण्य मार्ग पर चल पड़े । एक भयंकर जंगल में क्रूरता और अत्याचारों के लिए प्रसिद्ध 'अंगुलिमाल' नामक लुटेरा रहता था । उसने मनुष्यों के हाथों के अंगूठों को काटकर उनकी माला गूंथ कर अपने कंठ में पहन रखी थी । वे अंगूठे उन लोगों के थे जो उसके आधीन हो गये थे या अपने प्राण बचाने के प्रयत्न में उसके हाथों मारे गये थे । अंगुलिमाल का विचार था कि वह इतना प्रभावशाली बने कि उसके नाम से ही लोग थर-थर कांप उठें ।

मध्य मार्ग में कुछ गड़रियों ने बुद्ध को उस पथ पर चलते देख चेतावनी दी, "स्वामी, क्या आप उधर जा रहे हैं ? उस रास्ते से कोई भी चालीस-पचास आदमियों से कम संख्या में जाने का साहस नहीं करता । उधर अत्यन्त भयंकर डाकू है । अकेला जो भी उसके हाथ में पड़ जाये तो वह उसकी जान ले लेता है ।"

पर बुद्ध गड़रिये की चेतावनी की परवाह किये बिना अरण्य मार्ग से आगे बढ़े ।

अकेले सामने उसी दिशा में आगे बढ़कर

आते हुए बुद्ध को अंगुलिमाल ने दूर से ही देखा। वे गेरुए वस्त्र से ढक कर कुछ छिपा रहे थे। वे डर नहीं रहे थे। उनका मन स्थिर था वे चाहते थे कि डाकू उनसे छिपाई हुई चीज़ के बारे में पूछे।

अंगुलिमाल खून के धब्बों से सने हुए भाले को हवा में लहराते हुए गरज उठा, "तुम कोई चीज़ छिपा रहे हो! उसे मेरे हाथ में दे दो।" बुद्ध ने मंदहास करके गेरुए वस्त्र में छिपाये हुए भिक्षापात्र को निकाल कर अंगुलिमाल के हाथ में दे दिया। वे उसे एक-टक देखते रहे और उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे।

तब ही अजीब सी मुद्रा बनाकर अंगुलिमाल ने उसे उलटा-पलटा कर देखा और कहा, "उफ़, यह तो भिक्षापात्र है! तुम भले ही भिक्षुक क्यों न हो, मेरी खोज में आये हुए लगते हो। और मेरे सामने खड़े होकर मुस्कुराते हुए मेरे हाथ में खाली भिक्षापात्र देने की तुम्हारी ऐसी हिम्मत! क्या तुम्हें डर नहीं लगता? मेरी नज़र जिस भी मनुष्य पर पड़ जाये वह मुझसे बचकर नहीं निकल पाता। क्या तुम्हें मैं भयानक नहीं दिखाई देता? तुम नये हो इसलिए यहाँ आने का परिणाम नहीं जानते हो। जानते हो, मैं कौन हूँ?"

"तुम मनुष्य हो। मैं भी मनुष्य हूँ। ऐसी अवस्था में हम एक दूसरे से क्यों डरें?" बुद्ध ने कहा।

"तुम मुझसे डर कर अपना अंगूठा देकर अपने प्राण बचा लो वरना मैं तुम्हें मार डालूँगा। इसके बाद तुम्हारे अंगूठे को अपनी माला में गूँथ लूँगा। देखते हो यह अंगलियों की माला? जितने अंगूठे हैं, उतने प्राणी मैंने मारे हैं," डाकू ने कहा।

"तुम मुझे मार डालोगे, बस यही है न? कभी न कभी किसी रुप में मृत्यु निश्चित है। मुझे मार डालो। मैं प्रसन्नतापूर्वक मरने के लिए तैयार हूँ। आज तुम मुझे मार डालोगे और कल स्वयं तुम मर जाओगे, पर क्या तुम मेरी प्रकार निश्चिन्त होकर हँसते हुए मृत्यु का स्वागत करोगे? मैंने किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाया, इस संतुष्टि के साथ प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे भाले के सामने सर झुका सकता हूँ।

Sankar
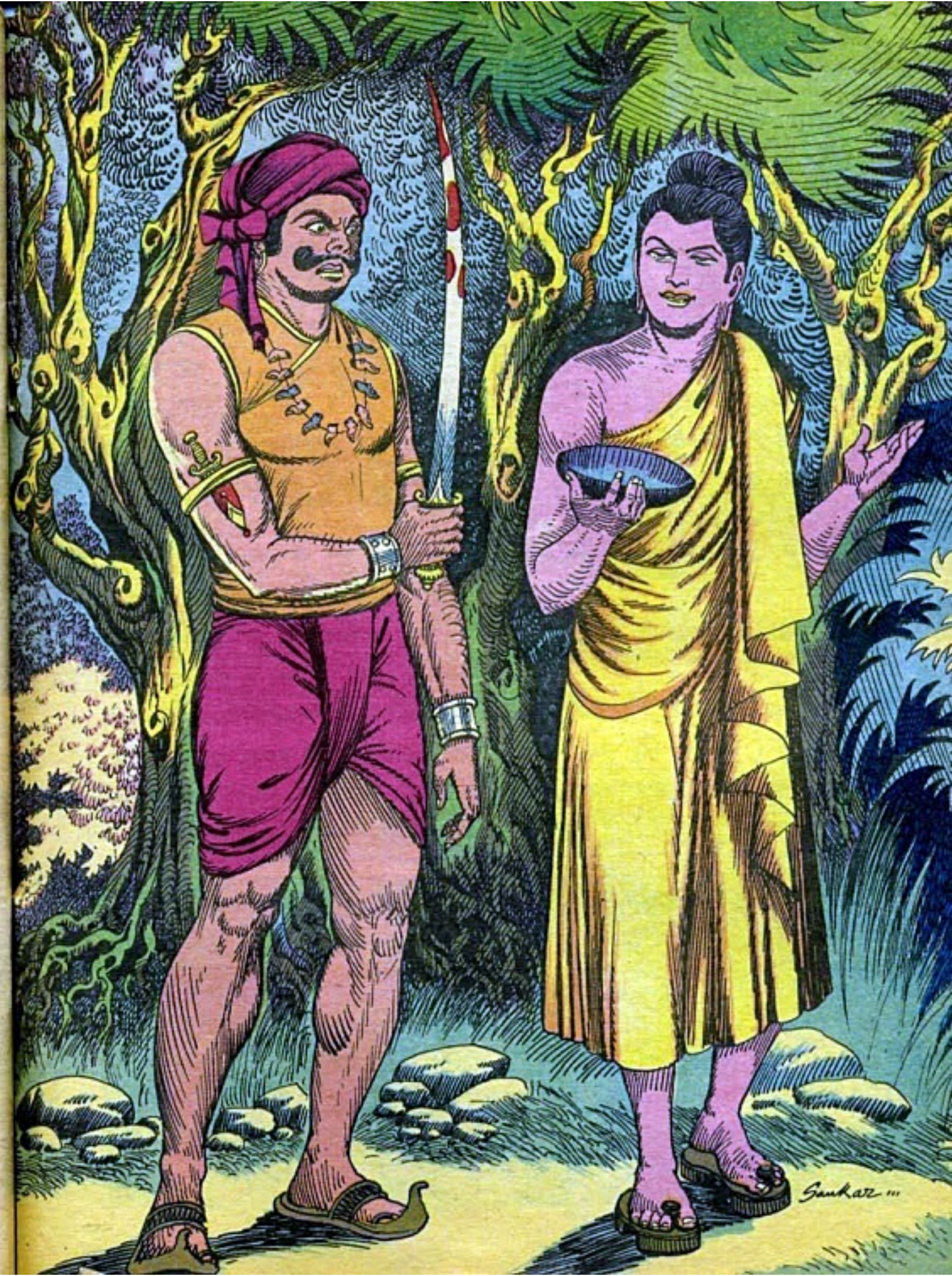
लेकिन क्या जब तुम्हारी मृत्यु निकट आयेगी तब तुम मेरी भांति प्रसन्न रह सकोगे ?" बुद्ध ने पूछा ।

ये वाक्य सुनने पर अंगुलिमाल का सर चकरा गया। वह किसी विचार में डूब गया। वह अपने भयंकर कृत्यों का स्मरण करके भय के मारे कांप उठा ! उसके पापों के लिए कोई प्रायश्चित नहीं है। महान पापी बने उसको क्षमा करने वाले ये दयालु व्यक्ति कौन हैं ? उसने इसके पूर्व कई बार बुद्ध के बारे में सुन रखा था । यह भी सुना था कि उनकी दृष्टि में बाघ-हिरन, सांप-मेंढक बराबर हैं; वे ऐसे करुणावतार हैं ! वे ही बुद्ध उसके उद्धारक हैं ! यों सोचते हुए वह इस प्रकार पुकार उठा मानो अपने आप से बड़बड़ा रहा हो, "बुद्धं शरणं गच्छामि !"

"अंगुलिमाल ! वह बुद्ध मैं ही हूँ। तुम्हारे लिए आया हूँ । इसीलिए मैंने तुम्हारे हाथ भिक्षापात्र दे रखा है। तुम अपने भूतकालीन जीवन को भूल जाओ और बौद्ध भिक्षु के रुप में मेरे शिष्य बनकर मेरे साथ चले आओ," बुद्ध ने समझाया ।

"बुद्ध भगवान !" यह कहकर अंगुलिमाल बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और उनसे निवेदन किया, "भगवान, केवल मैं अपना ही उद्धार नहीं चाहता, मेरे सभी अनुचर आपके शिष्य हैं, भिक्षु हैं !" यह कहकर अंगुलिमाल ने अपने सभी अनुचरों को बुलाया और बुद्ध से पुनः प्रार्थना की कि वे उनपर भी अनुग्रह करें ।

इसके बाद अंगुलिमाल और उसके कई अनुचर बौद्ध भिक्षु बनकर उनके पीछे चल पड़े ।

इसके बाद बुद्ध के उपदेश सुनकर अनेक दुष्ट व अत्याचारी लोग अपने पिछले जीवन से घृणा करके पश्चाताप करते हुए उनके शिष्य और भिक्षु बने । संघ की सेवा के लिए अपने को समर्पित कर अपने शेष जीवन को उन लोगों ने पुनीत बनाया । बुद्ध ने भयंकर डाकू को बदल दिया । इस परिवर्त्तन के चमत्कार को देखकर ऐसे कई बुरे मनुष्य उनके शिष्य बन गए ।

व्यवसाय का धर्म

शिवपुर गाँव में रामनाथ नामक वैद्य रहता था। वह गरीबों का इलाज मुफ़्त में किया करता था। संपन्न परिवार के लोग उसे जो कुछ देते, उसे ले लेता था। यदि गरीब लोग अपनी सामर्थ्य से अधिक मूल्य चुकाते और इस का पता रामनाथ को चल जाता तो वह बुरी तरह से उन्हें डांटता।

एक दिन रात को जब रामनाथ गहरी नींद में सो रहा था, तब किसी ने उस का दरवाजा खटखटाया। रामनाथ ने स्वयं जाकर दरवाजा खोला। ड्योढ़ी पर एक युवक और एक बूढ़ा खड़े थे। युवक पड़ोसी गाँव का था। उस की छोटी बहन पेट-दर्द से परेशान थी। बूढ़ा शिवपुर का निवासी था और उस की पोती तीव्र ज्वर से पीड़ित थी।

रामनाथ ने उन से पूछा, "तुम दोनों में से कौन इलाज का खर्चा उठाने की स्थिति में है?"

युवक ने झट जवाब दिया, "मैं थोड़ी-बहुत जमीन-जायदाद रखता हूँ। इसलिए आप जो भी माँगें, सो मैं दे सकता हूँ।"

पर बूढ़ा चुप रहा। इसपर रामनाथ ने युवक को समझाया, "अगली गली में कृष्णाचार्य नाम के एक वैद्य हैं। वे धन लिये बिना इलाज नहीं करते। तुम तो धन देने की स्थिति में हो, इसलिए तुम उन को अपने साथ गाँव ले जाओ। यदि मैं तुम्हारे साथ चलूँ तो हो सकता है कि कृष्णाचार्य इस गरीब के घर जाने से इनकार कर बैठे। इसलिए तुम बुरा न मानो," यों समझाकर रामनाथ बूढ़े के साथ चल दिया।

अनुशासन

ईराक देश के एक छोटे शहर की पाठशाला में हसन अब्दाली अध्यापक था। उसकी यह धारणा थी कि बच्चों को पढ़ाने की कला में और अनुशासन रखने में उससे बढ़कर कोई दूसरा शिक्षक नहीं है।

वर्ग मे अगर कोई विद्यार्थी एक मिनट भी देर से आता तो उसे चार बेंत लगा देता; पढ़ाते समय यदि कोई सर घुमा कर बगल की ओर झांक लेता तो उस पर दस बेंतों की मार पड़ जाती। अगर कोई छींक देता तो वह सारे विद्यार्थियों को हाथ बांध कर खड़े हो जाने का आदेश देता और उन से तीन बार यह वाक्य दुहराने को कहता, "खुदा तुम्हें क्षमा करें।"

अब्दाली के कुछ मित्रों ने उसे समझाया कि अनुशासन के नाम पर बच्चों के साथ ऐसा कठोर व्यवहार करना उचित नहीं है क्योंकि अधिक कठोरता करने से बच्चे सुधरने के स्थान पर और अधिक बिगड़ जायेंगे। लेकिन अब्दाली ने उन की बातों की परवाह नहीं की, उल्टे अपने व्यवहार के समर्थन में वह कहा करता था, "दिल पर बेंत की मार की याद न हो तो विद्यार्थी के दिमाग में पाठ नहीं घुसता। विद्यार्थियों में यदि कोई एक छींक देता है तो सब लोग हाथ बांध कर खड़े हो जाते हैं, इस नियम के द्वारा उन के बीच एकता का भाव पैदा हो जाता है।"

इस नये अध्यापक की शिक्षा-पद्धति नगर के अधिकांश विद्यार्थियों के अभिभावकों को बहुत पसंद आई। वह तो चाहते ही थे कि कोई ऐसा अध्यापक हो जो कठोरता से विद्यार्थियों के अनुशासन को ठीक रखे।

वे लोग कभी-कभी उच्च-स्वर में इस प्रकार अब्दाली की प्रशंसा किया करते थे जिससे ये शब्द उसके कानों में पड़ जायें। वे कहते थे, "इस नये अध्यापक के पर्यवेक्षण और परीक्षण में हमारे बच्चे चन्द दिनों में ही पंडित बन

जायेंगे। इसके पहले इस पाठशाला में जितने भी अध्यापक आये, वे केवल पढ़ाना जानते थे, परन्तु बच्चों को अनुशासन में रखने का सही ढंग नहीं जानते थे। अब पहली बार कोई ऐसा अध्यापक आया है जो उचित रुप से अनुशासन बनाये रख सकेगा।''

हर साल एक बार सारे विद्यार्थी शहर के आस-पास में स्थित उद्यानों में विनोद-यात्रा के लिए जाया करते थे। एक बार इसी परिपाटी के अनुसार सभी विद्यार्थी अपनी विनोद यात्रा समाप्त कर शाम के समय अपने घर लौट रहे थे। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था। धूप की गर्मी बनी थी। कुछ विद्यार्थियों ने अब्दाली को बताया कि उन्हें प्यास लगी हुई है। उनके साथ पानी का एक मशक था, पर उसमें पानी समाप्त हो गया था।

अब्दाली ने चारों ओर नज़र दौड़ाई, समीप में उसे एक कुँआ दिखाई पड़ा। उसने विद्यार्थियों से कहा, ''देखो, यहाँ पर एक कुँआ है। पास में रस्सा भी पड़ा हुआ है। आओ, हम लोग मशक में पानी भर कर प्यास बुझा लें।'' यह कहकर वह उन विद्यार्थियों को कुँए के निकट ले गया।

पर वह एक उजड़ा हुआ कुँआ था। कुँए के अन्दर पानी अवश्य था पर कुछ पत्थर टूट कर उसमें गिर गये थे, इस कारण से बड़ी कोशिश करने के बाद भी मशक में पानी नहीं भर रहा था।

इस पर अब्दाली ने विद्यार्थियों से कहा, ''मैं कुँए में उतर कर पानी से मशक भर दूँगा। तब
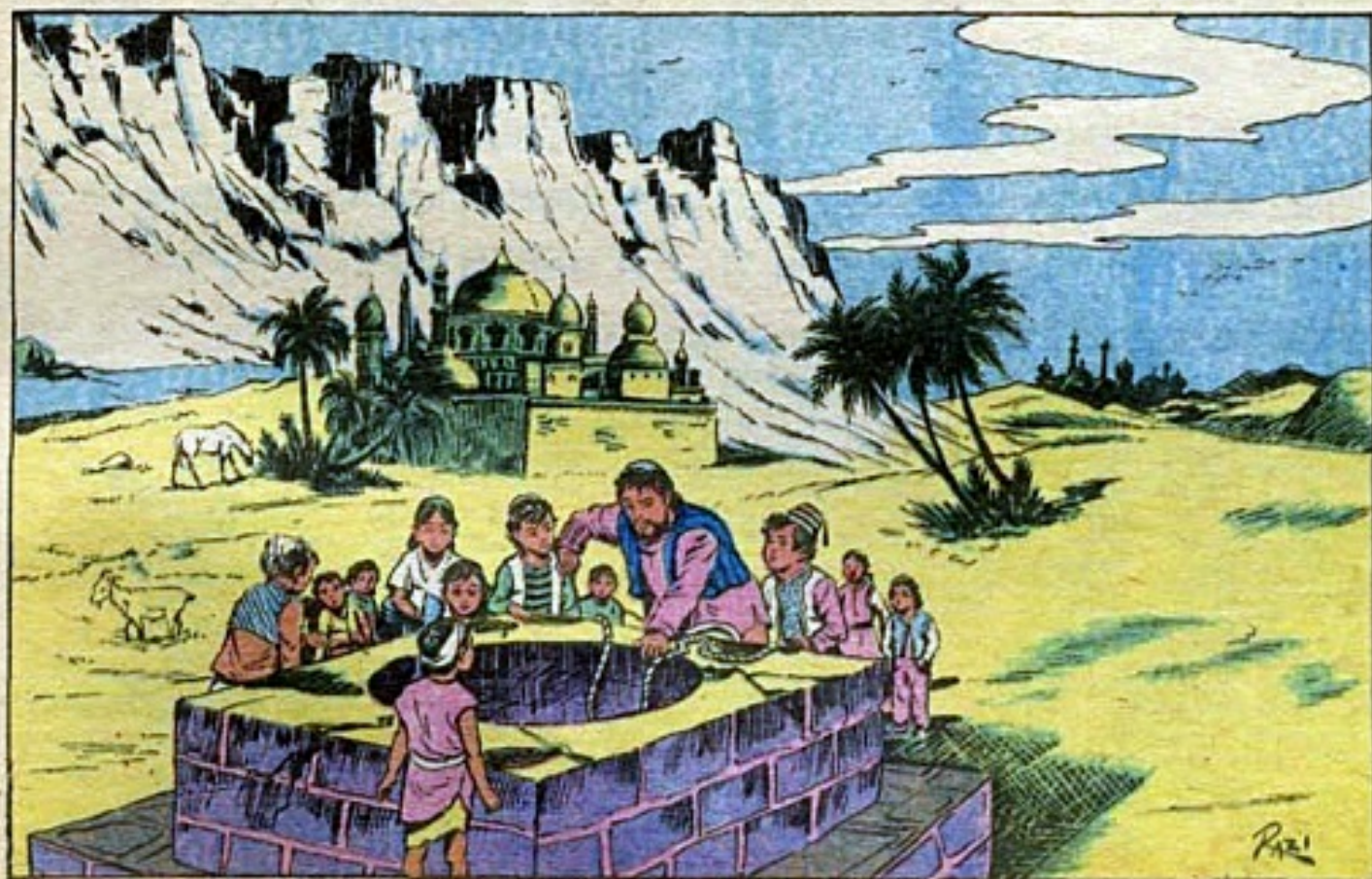
तुम लोग इस को ऊपर खींच लेना। इसके बाद मैं रस्से की सहायता से ऊपर आ जाऊँगा।" यह कहकर उसने रस्से के छोर को अपनी कमर में बांध लिया।

विद्यार्थियों ने रस्से की सहायता से उसे धीरे से कुँए के अन्दर उतार दिया।

अब्दाली ने कुँए के अन्दर जाकर देखा कि ऊपर से गिरा हुआ एक विशाल पत्थर पानी को ढके हुए है। उसने पत्थर को हटाया और मशक को पानी से भर दिया। फिर अपनी कमर में बंधे हुए रस्से को खोल कर उसके छोर को मशक से बांध दिया। विद्यार्थियों ने पानी से भरे उस मशक को ऊपर खींच लिया।

इस प्रकार अब्दाली ने पांच बार मशक को पानी से भर दिया। सभी विद्यार्थियों ने अपनी प्यास बुझाई। उसके बाद उन्होंने मशक से बंधे रस्से को खोल कर कुँए में छोड़ दिया।

अब्दाली ने रस्से को अपनी कमर से बांध लिया। विद्यार्थी बड़ी सावधानी के साथ उसको ऊपर खींचने लगे। वह कुँए के जगत से दो-तीन फुट नीचे ही था, तभी विद्यार्थियों में से एक छींक उठा। फिर क्या था, दूसरे ही क्षण अन्य लोगों के साथ अब्दाली को ऊपर खींचने वाले विद्यार्थियों ने झट से रस्से को छोड़ दिया और हाथ बांध कर चिल्ला उठे, "खुदा तुम्हें क्षमा करें।"

लेकिन विद्यार्थी शीघ्र ही अपनी भूल को समझ गये। इस बीच अब्दाली ऊपर से कुँए में गिर गया। पत्थर से टकराने के कारण उस की कमर में मोच आ गई।

अब्दाली पीड़ा के मारे ज़ोर से चिल्लाने लगा। विद्यार्थी उस रास्ते से निकलने वाले यात्रियों की सहायता मांगते हुए चिल्लाने लगे।

उनकी चिल्लाहट सुनकर कुछ लोग वहाँ पर आये और बड़ी कठिनाई से अब्दाली को कुँए से बाहर निकाला।

इस कटु अनुभव के बाद अब्दाली ने अनुशासन के नाम पर विद्यार्थियों को सताना छोड दिया। अब उसकी समझ में आ गया था कि अनुशासन का अर्थ जबरदस्ती नहीं है। उसे तो बच्चों के मन में बिठाना होगा।

अपमान

कमलपुर के निवासी भूपति ने अपनी पुत्री का विवाह गार्गेयपुर के निवासी वर प्रसाद के पुत्र के साथ करना चाहा। वर प्रसाद के परिवार के लोग भूपति के घर आये, कन्या को देखकर सबने उसको पसन्द किया। वर प्रसाद की जमीन-जायदाद की जानकारी प्राप्त करके भूपति भी संतुष्ट हुआ।

इस के बाद एक दिन विवाह का मुहूर्त निश्चय करने के लिए अपने एक मित्र राघव दास को साथ लेकर वर प्रसाद के घर पहुँचा। वर प्रसाद ने गाँव के चार-पांच बुजुर्गों को भी निमंत्रित किया था। दहेज और भेंट-उपहार के बारे में दिल खोल कर बातचीत हुई। इतने में वरप्रसाद की पुत्री सुगुणा रोती हुई घर में आई। वह भी विवाह के योग्य हो चुकी थी।

वर प्रसाद ने अपनी पुत्री से रोने का कारण पूछा। उसने अपने आँसू पोंछते हुए कहा, "बाबूजी, जब मैं मन्दिर से लौट रही थी नारायण ने मेरी वेणी पकड़ कर खींच ली।"

"वह तो आवारा है। तुम अकेली मन्दिर में क्यों गईं ?" वर प्रसाद ने अपनी पुत्री को डांटा।

"मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया कि अकेली मन्दिर में मत जाया करो। फिर भी तुम्हें बुद्धि नहीं आई !" वर प्रसाद के पुत्र ने अपनी बहन को खरी-खोटी सुनाई।

"वर प्रसाद जी, मैं फिर कभी आ जाऊँगा।" यह कह कर भूपति जाने को हुआ। सबने उसको रोकने का बड़ा प्रयत्न किया, पर कोई परिणाम न हुआ।

रास्ते में राघव दास ने भूपति से पूछा, "तुम अचानक बीच में ही उठ कर क्यों आ गये ?"

"अपने घर की कन्या का अपमान होने के बावजूद भी वे बाप-बेटे नामर्दों की तरह उसे सहकर चुप रह गये। अवश्य ही बहु के प्रति भी इनका वही व्यवहार होगा। इसलिए मैं अपनी कन्या को इस घर की बहु बनाना नहीं चाहता," भूपति ने उत्तर दिया।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां फरवरी १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

S. B. Prasad

M. C. Morabad

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां एक शब्द या छोटे वाक्य में हों । ★ दिसम्बर १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियां केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अक्तूबर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : बनो इन्सान !

द्वितीय फोटो : देशभक्त जवान !!

प्रेषक : कु. रजनी, ८७, रघुनाथ स्ट्रीट, जम्मू - १८० ००१

क्या आप जानते हैं ? के उत्तर

१. सर आइजाक न्यूटन; २. रिचर्ड तृतीय; पंद्रहवें लूइस; नेपोलियन बोनापार्ट; ३. फ्लोरेन्स नाइटिंगेल; ४. अलेकजेण्डर (सिकन्दर)

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, . Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Results of Chandamama Camlin Colouring Contest No.37 (Hindi)

1st Prize: Samani Rakesh C, Bombay-67. *2nd Prize:* Ranu Upadhyay, Udhaipur. Sunil Chaudhary, Gharakhal. Gopal Kaushik, Herjander Nagar. *3rd Prize:* Raj Kumar, New Delhi-110 092. Vikash Kumar Sinha, Jamshedpur. Amitabh Kumar Yadu, Raipur. Shubendu Mukherjee, Rourkela-7. Ku Susmeeta Masane, Umarer. Neetu Singhal, Kiratpur-246 731. Yachana Joshi Rinku, Nainital-244 713. Dhirender Rohatgi, Delhi. Renu Mangani, Manpuro. Jatinder Bali, Simla-171 002 H.P.

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ फरवरी १९८३ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

Devidas Kasbekar

★

Chandrapal Singh

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों ।

★ दिसम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा ।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा ।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें : **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

अक्तूबर के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : पानी नहीं, नहाऊँ कैसे !

द्वितीय फोटो : दूंगी पानी, लाओ पैसे !!

प्रेषक : शिव भगत राम, हरिजन विद्यालय, सदर बाजार, बैरकपुर, २४ परगना (प. बं.)

पुरस्कार की राशि रु. ५० इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी ।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.